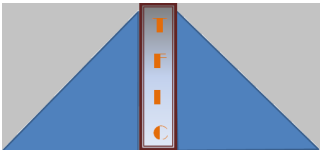

THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी-ग्रन्थाङ्क १५

जैन-जागरणके अग्रदूत

बीसवीं शताब्दीके दिवंगत और वयोवृद्ध
प्रमुख दिगम्बर जैन कार्यकर्त्ताओंके
संस्मरण एवं परिचय

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ग्रन्थ-माला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन एम. ए., डालमियानगर

प्रकाशक,
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
दुर्गाकुण्ड रोड, वनारस

प्रथम सस्करण ३०००
जनवरी १९५२
लागतमात्र मूल्य ~~दो~~ रुपये

मुद्रक,
देवताप्रसाद गहमरी
ससार प्रेस,
काशीपुरा, वनारस

जैन-जागरणके अग्रदूत

C0 0771-2562?
श्री जैन दादावाड़ी सेवार्थी लाभार्थ
अमोलक चन्द
सदर बाजार, रायपुर-492001,
के सौजन्य से.

"कौमें जाग उठती हैं अक्सर इन्हीं अफसानोंसे !"

पुस्तक प्रतिष्ठान
सतीबाजार, रायपुर (म०प्र०)

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

परिचय-तालिका

[त्याग और साधनके पावन-प्रदीप]

संस्मरण	लेखक	पृष्ठ
१. ब्र० सीतलप्रसाद		
जैनधर्म-प्रेमकी सजीव प्रतिमा	सर सेठ हुकमचन्द्र	१८
सस्मरण	गोयलीय	१९
इस युगके समन्तभद्र	साहू शान्तिप्रसाद	२८
जीवन-झाँकी	श्री राजेन्द्रकुमार जैन	२९
अमर विभूति	श्री कामताप्रसाद जैन	४६
२. बाबा भगीरथ वर्णी		
निर्भीक त्यागी	क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी	५४
निस्पृही	गोयलीय	५५
एक स्मृति	प० परमानन्द जैन शास्त्री	५९
पूज्य बाबाजी	श्री खुशालचन्द्र गोरावाला	६३
३. क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी		
पावन चरणरज	गोयलीय	६८
जीवन-रेखा	प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला	६९
अणोरणीयान् महतो महीयान्	प० कैलाशचन्द्र शास्त्री	८८
४. आत्मार्थी श्री कानजी महाराज		
काठियावाडके रत्न	प० कैलाशचन्द्र शास्त्री	९२
आत्मार्थी श्री कानजी महाराज	प० कैलाशचन्द्र शास्त्री	९३
५. ब्रह्मचारिणी चन्दाबाई		
बापूका आशीर्वाद	मोहनदास कर्मचन्द्र गाधी	१००
शत-शत प्रणाम	श्री कन्हैयालाल प्रभाकर	१०१
प्रथम दर्शन	श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	१०७
माँ श्री	श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य	११७
सती-तेज	श्री छोटेलाल जैन	१३०
६. मूआ		
पीहर-सासरेकी शोभा	गोयलीय	१३२
हमारे कुलकी गौरव	गोयलीय	१३३

[तत्त्वज्ञानके आलोक-स्तम्भ]

संस्मरण	लेखक	पृष्ठ
७. गुरु गोपालदास बरैया		
मेरी तीर्थयात्रा	गोयलीय	१४०
उनकी सीख	महात्मा भगवानदीन	१४५
परिचय	पं० नाथूराम प्रेमी	१५०
आजन्म नही भूल सकता	क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी	१६३
८. पण्डित उमरावसिंह न्यायतीर्थ		
उनका वरदान	गोयलीय	१६६
मेरे गुरु	प० कैलाशचन्द्र शास्त्री	१७२
९. पण्डित पन्नालाल बाकलीवाल		
जैन-समाजके विद्यासागर	श्री धन्यकुमार जैन	१८६
१०. पण्डित ऋषभदास		
गुदडीमे लाल	बाबू सूरजभान वकील	१९२
११. पण्डित महावीरप्रसाद		
धर्म-स्नेहसे ओत-प्रोत	गोयलीय	१९८
१२. पण्डित अरहदास		
क्या खूब आदमी थे	गोयलीय	२०४
सेवाभावी	श्री रूपचन्द्र गार्गीय	२०५
१३. पण्डित जुगलकिशोर मुख्तार		
पथ-चिह्न	श्री कन्हैयालाल प्रभाकर	२०८
यह तपस्वी	गोयलीय	२२५
१४. पण्डित नाथूराम प्रेमी		
मेरा सद्भाग्य	श्री जैनेन्द्रकुमार	२४०
मेरे दादा	स्व० हेमचन्द्र मोदी	२४५
स्मरणाध्याय	आचार्य पं० सुखलाल संघवी	२६४

[नवचेतनाके प्रकाशवाह]

संस्मरण	लेखक	पृष्ठ
१५. *बाबू सूरजभान वकील*		
पूजनीय बाबूजी	श्री नाथूराम प्रेमी	२७२
जैन-जागरणके दादा भाई	श्री कन्हैयालाल प्रभाकर	२८३
१६. *बाबू दयाचन्द्र गोयलीय*		
मुसीबतका साथी	महात्मा भगवानदीन	२९०
मूक साधक	श्री माईदयाल जैन	२९९
१७. *कुमार देवेन्द्रप्रसाद*		
श्रद्धाञ्जलि	श्री गुलाबराय एम० ए०	३०२
परिचय	श्री अजितप्रसाद जैन वकील	३०६
१८. *बैरिस्टर जुगमन्दिरलाल जैनी*		
जिन-वाणी-भक्त	श्री अजितप्रसाद वकील	३२२
१९. *श्री अर्जुनलाल सेठी*		
एक मीठी याद	गोयलीय	३२६
अधूरा परिचय	गोयलीय	३४२
और भी	गोयलीय	३५२
सेठीजीके दो पत्र	गोयलीय	३६४
और अगर मर जाइये तो...	महात्मा भगवानदीन	३७३
२०. *बैरिस्टर चम्पतराय*		
उन्हे मरना नही आता	गोयलीय	३८२
जीवन-झाँकी	श्री बनवारीलाल स्याद्वादी	३९१
वे और उनका मिशन	श्री कामताप्रसाद	४००
२१. *श्री ज्योतिप्रसाद जैन*		
वे मुझे अक्सर याद आते है ?	श्री कन्हैयालाल प्रभाकर	४२२
२२. *श्री सुमेरचन्द्र एडवोकेट*	गोयलीय	४३०
२३. *बाबू अजितप्रसाद वकील*	स्वलिखित	४३६

	लेखक	पृष्ठ
संस्मरण		
२४. बाबू सूरजभान		४५२
मालव-क्रान्तिके दूत	श्री कौशलप्रसाद जैन	४५६
वह देवता नहीं, मनुष्य था	श्री दौलतराम मित्र	
२५. महात्मा भगवानदीन		४६०
तप-त्यागकी मूर्ति	गोयलीय	४६१
महात्माजी	श्री जैनेन्द्रकुमार	
[श्रद्धा और समृद्धिके ज्योति-रत्न]		
२६. राजा हरसुखराय	गोयलीय	४६६
२७. सेठ सुगनचन्द्र	गोयलीय	४७२
२८. राजा लक्ष्मणदास		
महासभाके जन्मदाता	श्री गुलाबचन्द्र टोग्या	४७८
उनके उत्तराधिकारी	गोयलीय	४८४
२९. सेठ माणिकचन्द्र	श्री नाथूराम प्रेमी	४८८
३०. महिलारत्न मगनबाई	गोयलीय	४९८
३१. सेठ देवकुमार	प० हरनाथ द्विवेदी	५१०
३२. सेठ जम्बूप्रसाद	श्री कन्हैयालाल 'प्रभाकर'	५१६
३३. सेठ मथुरादास टडैया	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	५२०
३४. सर मोतीसागर	श्री कन्हैयालाल प्रभाकर	५४१
३५. रा० ब० जुगमन्दरदास	गोयलीय	५४५
३६. रा० ब० सुल्तानसिंह		
कांग्रेसके मूक सेवक	गोयलीय	५६८
यह भव्य व्यक्तित्व	श्रीमती कुथा	५७१
३७. सर सेठ हुकमचन्द्र		
राज-ऋषि	गोयलीय	५८४
पूज्य काकाजी	सेठ हीरालाल	५८५

——:०:——

प्रकाशकीय

१. इस प्रथम भागमे पहली पीढीके उन दि० जैन कुलोत्पन्न २६ दिवगत और ८ वर्त्तमान वयोवृद्ध महानुभावोके सस्मरण एवं परिचय दिये गये है, जो वीसवी शताब्दीके लगभग प्रारम्भसे लोकोपयोगी कार्य्यो अथवा जैनसमाजके जागरणमें किसी-न-किसी रूपमे सहयोग देते रहे है।

२ दूसरी पीढीके उन प्रमुख व्यक्तियोका परिचय जो १६२० के आस-पास कार्य्य-क्षेत्रमें आये, द्वितीय भागमे दिया जायगा। पहली पीढ़ीके साथ द्वितीय पीढीको विठाना उपयुक्त नही समझा गया।

३ यूं तो न जाने कितने त्यागी, विद्वान्, सुधारक, लोकसेवक, साहित्यिक, दानवीर और मूक साधक जैनसमाजमें हुए और है, किन्तु उन सभीका परिचय पाना, लिखना, लिखाना किसी भी एक व्यक्ति द्वारा सम्भव नही। यह महान् कार्य्य तो समूचे समाजके सहयोगसे ही सम्भव हो सकता है। ज्ञानपीठ तो एक प्रथाका उद्घाटन कर रहा है। अब यह समाजके लेखकोका कर्तव्य है कि वे जिनके बारेमें जानकारी रखते है, उनके सम्बन्धमे लिखें और इस प्रथाको अधिकाधिक विकसित करें। सुरुचिपूर्ण सस्मरणोका 'ज्ञानोदय' सदैव स्वागत करेगा।

४ हम कब तक इतिहासके अभावका रोना रोते रहेगे? हमारे पूर्वजोका इतिहास जैसा चाहिए वैसा उपलब्ध नही है, तो न सही। हमे नये इतिहासका निर्माण तो अविलम्ब प्रारम्भ कर ही देना चाहिए। जो हमारी समाजकी विभूतियाँ हमारे देखते-देखते ओझल हो गई, या आज भी जिनका दम गनीमत है, उनका परिचय तो शीघ्र-से-शीघ्र लिख ही डालना होगा। अन्यथा जो उलाहना आज हम अपने पूर्ववर्त्ती

लेखकोको देते रहे है, वही उलाहना आगेकी पीढी हमे देनेको मजबूर होगी।

५. हमे खेद है कि इन महानुभावोके सम्बन्धमे अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी कुछ नही दिया जा सका—डिप्टी चम्पतराय, पं० चुन्नीलाल, प० बालमुकन्द, जैनी जीयालाल, जैनी ज्ञानचन्द, तीर्थभक्त ला० देवीसहाय, ला० शिब्बामल, ला० जगन्नाथ जौहरी, पं० मेवाराम रानीवाले, बा० ऋषभदास वकील, बा० प्यारेलाल वकील, प० बृजवासी लाल, जिनवाणीभक्त ला० मुशद्दीलाल, रायबहादुर पारसदास।

६. पुस्तकमे कई महानुभावो का परिचय कतई अधूरा है। हम उनका विस्तारसे परिचय देना चाहते थे। लेकिन उनके कुटुम्बियो, समकालीन सहयोगियो-मित्रोको अनेक पत्र लिखने पर भी सफलता नही मिली। यहाँ तक कि कई व्यक्तियो की तो जन्म-मरण की तिथियाँ भी विदित न हो सकी, और जो मिली भी वे बेतरतीब। कही, जन्म-समय तिथि-सवत्का उल्लेख है तो मृत्यु-समय तारीख सन् का।

७ एक-दो को छोडकर प्राय सभी चित्र पुराने पत्र-पत्रिकाओंसे लेकर नये सिरेसे उनका डिजाइन कराके ब्लाक बनवाये है। यदि चित्र सुन्दर मिलते तो ब्लाक भी उतने ही आकर्षक होते। कई चित्र तो मिल ही नही सके।

यह एक जलती मशाल है !

"जैन जागरणके अग्रदूत" नामकी एक पुस्तक ज्ञानपीठ प्रकाशित कर रहा है। उसमें आपके भी कुछ लेख ले रहा हूँ। जानता हूँ इसमें कोई ऐतराज तो आपको हो ही नही सकता, इसलिए यह सिर्फ इत्तला है।"

श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयका बहुत दिन हुए यह पत्र मिला, तो सचमुच मैंने इसे एक मामूली इत्तला ही माना और यह इत्तला बस मेरे दिमागको जरा यो ही छूकर रह गई, पर ज्यो-ज्यो पुस्तकके छपे फर्मे मेरे पास आते गये, मै रसमें डूबता गया—जैसे अनेक बार हरकी पैडियाँ उतरकर ब्रह्मकुण्डमें नहाया हूँ, और आज जब यह पुस्तक पूरी हो रही है, तो मुझे लगता है कि रोज-रोज छपकर हमारे हाथो आनेवाली पुस्तकोकी तरह यह कोई पुस्तक नही है, यह तो एक जलती मशाल है।

जलती मशाल जो हमारे चारो ओर फैले और हमें पूरी तरह घेरकर खडे हुए भूतोकी भीड-से अँधेरेको चीरकर हमें राह दिखाती है। राह, जिसपर हमारे पैर हमें हमारी मजिलकी ओर लिये चलें और राह—जिसपर हमारे दिल-दिमाग दूर तक साफ-साफ देख सकें !

एक घना अँधेरा है, जो हमें चारो ओरसे घेरे खडा है। वह अँधेरा है—'आज' के मोहका। हम हर बातमें 'आज' को कलसे अधिक महत्त्व देते है। अधिक महत्त्व देना कोई बुरी बात नही, अनहोनी घटना भी नही; क्योकि हमारी आँखें देखती ही है, हमारे सामनेकी चीज—न पीछे, न बहुत आगे, पर हम आजके इस मोहमें कलकी उपेक्षा करते है।

कल जो कल बीत चुका और कल, जो कल आयेगा। एक कल, जिसने अपनेको मिटाकर, खपाकर हमारे आजकी नीव रक्खी और एक

कल, जो अपनेको छिपाये, गुमनाम रक्खे, हमारे जीवनमहलके गुम्बदोपर स्थापित करनेके लिए सोनेके कलश गढे जा रहा है !

नीव . जिसके विना अस्तित्व नही और कलश, जिसके विना व्यक्तित्व नही, तो 'कल' ही है, जो हमारी सम्पूर्णताकी रचनामें अपनी सम्पूर्णताका आत्मार्पण किये जा रहा है और उसके ही द्वारा रचित है वह सम्पूर्णता हमारी, जिसके गर्वमें, दर्पमें और भुलावेमें पडे हम उसकी उपेक्षा करें !

कल · जो कल बीत चुका और कल, जो कल आयेगा !

× × ×

एक घना अँधेरा है, जो हमे चारो ओरसे घेर खडा है। यह अँधेर है—आजकी उपेक्षाका। हम हर बातमें कलके गीत गाते है, कलके सपन देखते है। कल : जो बीत गया, और कल, जिसका अभी कोई अस्तित्व नही। कलके गीत और कलके सपने कोई बुरी बात नही, क्योकि स्मृतियो का आधार है कल और कल्पनाओका आगार है कल, पर हम कल और कलके मोहमें आजकी उपेक्षा करते है।

× × ×

आजका मोह, कलकी उपेक्षा, एक अँधेरा !
कलका मोह, आजकी उपेक्षा, दूसरा अँधेरा !!
फिर स्वस्थता कहाँ है ? प्रकाश कहाँ है ?

स्वस्थता और प्रकाश जीवनके व्यापक तत्त्व है। स्वस्थता, तो फिर सम्पूर्ण स्वस्थता और प्रकाश तो बस प्रकाश ही प्रकाश। एकागिता अन्धकार है, समन्वय प्रकाश ! एकान्तवादी दृष्टिकोण है अन्धकार और अनेकान्तवादी दृष्टिकोण है प्रकाश !!

हम कल थे, हम आज है, हम कल होगे और यो हमारा अस्तित्व कलसे कलतक फैला है। एक कल हमारी बायी मुट्ठीमें, एक दायीमें और हमारे साँस आजकी हवामें। हम देखें पीछे, हम जियें आज, हम बढें आगे। पीछे देखनेका अर्थ है जीवनके अनुभव, आज जीनेका अर्थ है जीवनकी साधना, आगे बढनेका अर्थ है जीवनकी सिद्धिका विश्वास !

जीवनके अनुभव, जीवनकी साधना, जीवनकी सिद्धि, इनमें किसी एककी भी उपेक्षाका अर्थ है खण्डित जीवन और खण्डित जीवन निश्चय ही खण्डित देहसे बडी विडम्बना है।

यह पुस्तक हमें जीवनकी इस विडम्बनासे बचाती और जीवनकी स्वस्थ राह दिखाती है। हम उनका अभिनन्दन करें, जो कल आजका निर्माण कर गये, हम इस तरह जियें कि कलके निर्माता हो और यही मैं कहता हूँ—रोज-रोज छपकर हमारे हाथो आनेवाली पुस्तकोकी तरह यह कोई पुस्तक नही, यह तो एक जलती मशाल है!

× × ×

पुरानोकी स्मृतिका अभिनन्दन, हमारे लिए कोई नई बात नही। हमारा ही राष्ट्र तो है, जिसने जीवितोके प्रति श्रद्धाके साथ मृतकोका श्राद्ध करनेकी महान् प्रथाका आविष्कार किया और हमी तो है, जिनके आँगनमें प्यारकी स्मृति ताजमहल बन, ससारका सातवाँ आश्चर्य हो गई!

पुरानोकी स्मृतिका अभिनन्दन, हमारे लिए कोई नई बात नही, पर हमी तो है, जिनका इतिहास दूसरोका अन्दाज बनकर जी रहा है और हमी तो है, जिनके पास, अपने शहीदोकी एक सूची तक नही। पुरानी बात मैं नही कहता, यही १८५७ से १९४७ तकके स्वतन्त्रता-युद्धमें बलि हुए शहीदोकी सूची!

१८५७, जब घने अधकारमें पड़े-सोते राष्ट्रके जीवनमें गैरतकी पहली पौ फटी और १९४७; जब कुलमुलाते, करवट बदलते राष्ट्रके जीवनमें स्वतन्त्रताका सूर्योदय हुआ। ४३ साल वे, और ४७ साल ये! गैरतसे आजादी तकके नये जागरणके पथचिह्न, जो कुछ हमारे चलते पैरो रौंदे गये और कुछ समयकी हवासे धुंधले पड चले।

हम लापरवाही और प्रमादका मद पिये पडे रहें और अपनी घडीको भी उसकी खूराक न दे, गतिहीन रक्खें, पर समयकी गतिका रोकना तो हमारे वश नही! और कौन-सा कायर है, जिसे समयकी गतिने धुंधला कर मिटा न दिया? तो हम चाहें या न चाहें, समयकी हवा नये जागरण-

के इन असुरक्षित धुंधले पथचिह्नोको धुन्दकी तरह उडानेमें चूकेगी नही। और ये पथचिह्न ही तो है, जो भविष्यमें हमारे नये जागरणके इतिहास-निर्माणका बल होगे।

'जैन-जागरणके अग्रदूत' अपनी दिशामें इन धुंधले और मिटे जा रहे पथचिह्नोको श्रद्धासे, श्रमसे, सतर्कतासे समेटकर सेफमें रख लेनेका ही एक मौलिक प्रयत्न है और यह प्रयत्न अपनी जगह इतना सफल रहा है कि 'आज' उसका मान करनेमें चूक भी जाये, तो 'कल' उसका सम्मान कर स्वयं अपनेको कृतार्थ मानेगा।

× × ×

इस प्रयत्नकी मौलिकतापर हम एक नज़र डालते चलें। हम सक्रान्ति-कालसे गुजर रहे है, जब बहुत कुछ पुराना टूट रहा है और नया बन रहा है। हर आदमी निर्माता नही होता और टूटफूटकी अव्यवस्थामें घबराया-सा रहता है। अव्यवस्थाकी इसी घबराहटमें आज हम जी रहे है और इस स्थितिमें नही है कि अपने जागरणका इतिहास लिखनेको पलोथी मार बैठें! उधर समयकी हवा पुराने पथचिह्नोके खण्डहरोका मलवा साफ करनेमें तेज़ीसे लगी है, तो आज जो अनिवार्य है, वह यही कि हम अपने-अपने हिस्सेकी स्मृतियोका चयन कर लें। इस चयनमें इतिहासका ठोस होगा, तो काव्यकी तरलता भी। यह ठोस भविष्यमें इतिहासका ईंट-चूना, तो यह तरलता उसे जोडनेकी प्रेरणा और यो दोनो ही अत्यन्त उपयोगी।

यह पुस्तक, यह जलती मशाल, इस चयनका महत्त्व बताती, उसका तरीका सिखाती और नये जागरणके भिन्न-भिन्न क्षेत्रोके साधकोको हाँक लगाती है। मेरा विश्वास है कि यह हाँक कण्ठकी नही, हृदयकी है और कानो तक ही नही, दिलोकी गुफाओ तक गूंजेगी!

× × ×

यहाँ जो लेख है, वे जीते-जागते लेख है और 'वकालतन' नही, जनता की अदालतमें 'असालतन' आनेवालोमें है। वे न उनकी कलमके आँसू

है, जो पैसे लेकर व्याख्यान करते हैं और न उनके ओठोंकी मुस्कराहट, जो जिनके सोते-सोते भी ओठोंमें हँसना जानते हैं। वे उनकी कलमके करिश्मे हैं, जो अपने ही दुखमें रोने और अपने ही सुखमें हँसने हैं। यही कारण है कि मीनरके पन्नोंकी तसवीरोंमें रंगोंकी चमक भले ही कहीं हल्की हो, भावनाओंकी चमक हर जगह झलकी हुई है। हाँ, उनमें कुछ कहनेकी अभिरुचि मुझमें नहीं जो अध्ययनके लिए नहीं, गेटप देखकर अलमारीमें सजानेके लिए ही किताबें खरीदते हैं। जानता हूँ ज्ञानपीठका प्रकाशन-मानदण्ड उनकी प्यासके लिए भी पर्याप्त है, पर मैं अपनी सिफारिशका आभार लूँ क्यों हूँ!

और अब इस चमनके माली श्री गोयलीयके लिए क्या कहूँ, जो सदा साधनोंकी उपेक्षा कर, साधनाके ही पीछे पागल रहा और जिसके निर्माण में स्वयं ब्रह्माने पक्षपात कर शायरका दिल, सिंहका साहस और सपूतकी सेवावृत्तिको एक ही जगह केन्द्रित कर दिया।

हमारे ही बीच हैं, वे जो धर्मशाला बनाते हैं और हमारे ही बीच हैं, वे जो मन्दिरोंका निर्माण करते हैं, पर क्या इस पुस्तकका निर्माण धर्मशाला और मन्दिरके निर्माणसे कम पवित्र है?

सहारनपुर,
१८ दिसम्बर १९५१

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

ये टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ

हमारे यहाँ तीर्थङ्करोंका प्रामाणिक जीवन-चरित्र नहीं, आचार्योंके कार्य-कलापकी तालिका नहीं, जैन-संघके लोकोपयोगी कार्योंकी सूची नहीं; जैन-सम्राटों, सेनानायकों, मन्त्रियोंके बल-पराक्रम और शासन-प्रणालीका कोई लेखा नहीं, साहित्यिकों एवं कवियोंका कोई परिचय नहीं। और-तो-और, हमारी आँखोंके सामने कल-परसों गुजरनेवाली विभूतियोंका कहीं उल्लेख नहीं, और ये जो दो-चार बड़े-बूढ़े मौतकी चौखटपर खड़े हैं; इनसे भी हमने इनके अनुभवोंको नहीं सुना है, और शायद भविष्यमें दस-पाँच पीढ़ीमें जन्म लेकर मर जानेवालों तकके लिए परिचय लिखनेका उत्साह हमारे समाजको नहीं होगा।

प्राचीन इतिहास न सही, जो हमारी आँखोंके सामने निरन्तर गुजर रहा है, उसे ही यदि हम बटोरकर रख सके, तो शायद इसी बटोरनमें कुछ जवाहरपारे भी आगेकी पीढ़ीके हाथ लग जाएँ। इसी दृष्टि से—

बीती ताहि बिसार दे आगेकी सुध लेहि

नीतिके अनुसार संस्मरण लिखनेका डरते-डरते प्रयास किया। डरते-डरते इसलिए कि प्रथम तो मैं संस्मरण लिखनेकी कलासे परिचित नहीं। दूसरे अत्यन्त सावधानी बरतते हुए भी यत्र-तत्र आत्म-विज्ञापनकी गन्ध-सी आने लगी। नौसिखुआ होनेके कारण इस गन्धको निकालनेमें समर्थ न हो सका। तीसरे मेरा परिचय क्षेत्र भी अत्यन्त संकुचित और सीमित था। फिर भी साहस करके दो-एक संस्मरण, पत्रोंको भेज दिये। प्रकाशित होनेपर ये अनसँवरी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ भी अपनोंको पसन्द आईं, और उन्हींके आग्रहपर ये चन्द संस्मरण और लिखे जा सके।

इन संस्मरणोंको ज्ञानपीठकी ओरसे पुस्तकाकार प्रकाशित करनेकी बात उठी तो मुझे स्वयं यह प्रयत्न अधूरा और छिछोरापन-सा मालूम देने लगा। "इन्हीं महानुभावोंके संस्मरण क्यों प्रकाशित किये जायें, अमुक-अमुक महानुभावोंके संस्मरण भी क्यों न प्रकाशित किये जायें?" यह स्वाभाविक प्रश्न उठना लाज़िमी था। लोकोदय-ग्रन्थमालाके विद्वान्

और यशस्वी सम्पादक भाई लक्ष्मीचन्द्रजीकी सम्मतिसे निश्चय हुआ कि ये सस्मरण निम्नलिखित चार भागोमे प्रकाशित किये जाये—

प्रथम भागमें—पहली पीढीके उन दिवगत और वर्त्तमान वयोवृद्ध दि० जैन कुलोत्पन्न विशिष्ट व्यक्तियोके सस्मरण एव परिचय दिये जायें जो वीसवी शताब्दीके पूर्व या प्रारम्भमे समाज-सेवाकी ओर अग्रसर हुए।

द्वितीय भागमें—दूसरी पीढीके उन महानुभावोका उल्लेख रहे, जो १९२० के वाद कार्य-क्षेत्रमें आये।

तृतीय-चतुर्थ भागमें—श्वेताम्बर-स्थानकवासी जैन प्रमुखोके परिचय १९०१ से १९५२ तकके दिये जाये।

इस निर्णयके अनुसार प्रथम भागकी जो तालिका वनी, उन सवपर किसी एक व्यक्ति द्वारा लिखा जाना कतई असम्भव और उपहासास्पद प्रतीत हुआ। अत निश्चय हुआ कि प्रत्येक व्यक्तिका सस्मरण एव परिचय सम्बन्धित और अधिकारी महानुभावोसे लिखाये जायें और अधिक-से-अधिक जानकारी दी जाय, ताकि पुस्तक इतिहास और जीवनीका काम भी दे सके।

जितना मै लिख सकता था, मैने लिखा, अनुनय-विनय करके जितना लिखवा सकता था, लिखवाया। जीवन-चरित्रो, अभिनन्दन-ग्रन्थो और पत्र-पत्रिकाओसे जो मिल सका, चयन किया। मेरे निवेदनको मान देकर—महात्मा भगवानदीनजी, भाई प्रभाकरजी, श्री खुशालचन्द्रजी गोरावाला, प० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य प० नेमिचन्द्रजी, प० नाथूराम जी प्रेमी, प० रूपचन्द्रजी गार्गीय, श्री कौशलप्रसादजी, गुलाबचन्द्रजी टोग्या, प० हरनाथ द्विवेदी, श्री हुकमचन्द्रजी बुखारिया, श्रीमती कुन्था देवी जैनने सस्मरण एव परिचय भेजनेकी कृपा की है। इन्हीके लेखो से पुस्तकमें निखार आया है, और इन्हीके सौजन्यसे पुस्तक अपने वास्तविक उद्देश्यकी पूर्ति कर सकी है।

डालमियानगर (विहार) अ० प्र० गोयलीय

५ जनवरी १९५२

जन्म—	लखनऊ १८७९ ई०
दीक्षा—	सोलापुर १९११ ई०
स्वर्गवास—	लखनऊ १० फरवरी १९४२ ई०

जैनधर्म-प्रेमकी सजीव प्रतिमा

सर सेठ हुकमचन्द्र

पूज्य ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजीको हम जैनधर्मके सच्चे महात्मा मानते हैं। धर्मकी वे एक सजीव मूर्ति थे। उनकी धार्मिक निष्ठा और लगनके कारण हमारी उनपर महान् श्रद्धा थी, और हम उनके प्रति बहुत पूज्य बुद्धि रखते थे। जब-जब वे इन्दौर पधारते हमें उनके दर्शन करके अत्यन्त खुशी होती थी; और एक दिन तो अवश्य उनके साथ जीमते थे।

वे एक महापुरुष थे।

स्वं० सेठ माणिकचन्द्रजीके साथ उनकी मेरी पहिली भेंट हुई थी। उनके अन्तिम दर्शन मुझे रोहतकमें हुए। रोहतकमें वे अस्वस्थ थे और विशेषकर उनके स्वास्थ्यको पूछनेके लिए और उनके दर्शन करनेके लिए हम रोहतक गये थे। चूंकि उस महान् आत्मामें हमारी अत्यन्त पूज्य बुद्धि थी।

जब-जब वे हमसे मिलते थे, तब-तब जैन विश्वविद्यालयकी स्थापनाके लिए अवश्य प्रेरणा करते थे। इस सम्बन्धमें उनकी बडी दृढ लगन और भावना थी। यह उनकी साधना अपूर्ण रह गई।

—वीर, ८ अप्रैल, १९४४

संस्मरण

गोयलीय

सन् १३ या १४ की बात है, मैं उन दिनों अपनी ननिहाल (कोसीकलाँ, मथुरा) की जैन पाठशालामें पढ़ा करता था। बालबोध तीसरा भाग घोटकर पी लिया गया था और महाजनी हिसाबमें कमाल हासिल करनेका असफल प्रयत्न जारी था। तभी एक रोज एक गेरुआ वस्त्रधारी—हाथमें कमण्डलु और बगलमें चटाई दबाये कसबेके १०-५ प्रमुख सज्जनोंके साथ पाठशालामें पधारे। चाँद घुटी हुई, चोटीके स्थानपर यूँही १०-५ रत्तीभर बाल, नाकपर चश्मा, सुडौल और गौरवर्ण शरीर, तेजसे दीप्त मुखाकृति देख हम सब सहम गये। यद्यपि हाथमें उनके प्रमाण-पत्र नहीं था, फिर भी न जाने कैसे हमने यह भाँप लिया कि ये कोरे बाबाजी नहीं, बल्कि बाबू बाबाजी हैं। साधु तो रोजाना ही देखनेमें आते थे, बल्कि आगे बैठने के लालचमें हम खुद कई बार रामलीलाओंमें साधु बन चुके थे, परन्तु किताबी पाठके सिवा सचमुचके जीते जागते साधु भी जैनियोंमें होते हैं, इस विलुप्त पुरातत्त्वका साक्षात्कार अनायास उसी रोज हुआ। मैं आज यह स्मरण करके कल्पनातीत आनन्द अनुभव कर रहा हूँ कि बचपनमें मैंने जिस महात्माके प्रथमबार दर्शन किये, वे इस युगके समन्तभद्र ब्र० सीतलप्रसादजी थे।

विद्यार्थियोंकी परीक्षा ली। देव-दर्शन और रात्रि-भोजन त्यागका महत्त्व भी समझाया। दो-एक रोज रहे और चले गये, मगर अपनी एक अमिट छाप मार गये। जीवनमें अनेक त्यागी और साधु फिर देखनेको मिले, मगर वह बात देखनेमें न आई।

"तुलसी कारी कामरी, चढ़ै न दूजौ रंग।"

सैकडो पढे हुए पाठ भूल गया। जीरेकी वजाय सौंफ और धनियेके वजाय अजमायन लानेकी मैंने अक्सर भूल की। पर न जाने क्यो ब्र० सीतलप्रसादजीको जो पहलीवार देखा तो फिर न भूला।

उस चोरिया नशींका[1] दिलीमें मुरीद हूँ।
जिसके रियाज़ों ज़ुहदमें[2] बूएरिया[3] न हो॥

—अज्ञात

सन् १९१९ मे रौलटऐक्ट विरोधी आन्दोलनके फलस्वरूप अध्ययन के वन्धनको तोडकर सन् २० मे मैं दिल्ली चला आया। उसी वर्ष ब्रह्मचारीजीने दिल्लीके धर्मपुरेमे चातुर्मास किया। भूआजीने रातको आदेश दिया कि प्रात काल ५ वजे ब्रह्मचारीजीको आहारके लिए निमन्त्रण दे आना, निमन्त्रण विधि समझाकर यह भी चेतावनी दे दी कि "कही ऐसा न हो कि दूसरा व्यक्ति तुमसे पहले ही निमन्त्रण दे जाय और तुम मुँह ताकते ही रह जाओ।"

ब्रह्मचारीजीके चरणरज पडनेसे घर कितना पवित्र होगा, आहार देनेसे कौन-सा पुण्य वन्ध होगा, उपदेश-श्रवणसे कितनी निर्जरा होगी और कितनी देर सवर रहेगा—यह लेखा तो भूआजीके पास रहा होगा, मगर अपनेको तो वचपनमे देखे हुए उन्ही ब्रह्मचारीजीके पुन दर्शनकी लालसा और निमन्त्रण देनेमे पराजयकी आशकाने उद्विग्न-सा कर दिया, वोला—

"यदि ऐसी वात है तो मैं वहाँ अभी जा वैठता हूँ, अन्दर किसीको घुसते देखूंगा तो उससे पहले मैं निमन्त्रण दे दूंगा।"

भूआजी मेरे मनोभावको न समझ कर स्नेहसे वोली—"नही, वन्ने! (दूल्हा) अभीसे जानेकी क्या जरूरत है! सवेरे-सवेरे उठकर चले जाना।"

---

१ चोरिया अथवा चटाई पर वैठा हुआ तपस्वी। २ व्रत और त्यागमें। ३ वनावटकी गन्ध।

उसी उत्सवमें मैंने ब्र० जीका भाषण पहले-पहल सुना। वह सीधे-सादे ढंगसे सरल भाषामें बोलते थे—जो भी उनके भाषणको सुनता, वह प्रभावित हुए बिना न रहता। उनको मैंने हिन्दीमें ही बोलते सुना। हां, जब कोई अंग्रेजी-दां होता तो वह बीच-बीचमें अंग्रेजी भी बोलते जाते थे। उनके भाषणमें आध्यात्मिकताकी पुट रहती थी। वह अध्यात्ममय थे—स्वयं चर्या करते और आत्मगुणोंका रस स्वयं लेते और दूसरोंको देते थे। इटावेमें उन्होंने चातुर्मास किया था—किसी सभाकी ओरसे उनका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। विषय था 'उपकार'। मुझे गुमान न था—मैं यह अनुमान न कर सका था कि 'उपकार' पर बोलते हुए, वह जैन-सिद्धान्तकी आध्यात्मिकताको जनताके सम्मुख रख देंगे। उन्होंने उसका खूब प्रतिपादन किया और फिर उसे राष्ट्रियताके रंगमें भी रंग दिया—स्वदेशी व्यवहार भी 'उपकार' में ला दिखाया! सुननेवाले दंग थे। ऐसा भाषण उन्होंने नहीं सुना होगा!

जगवन्तनगरके प्रतिष्ठोत्सवकी परिसमाप्तिपर वह जाने लगे—हम लोग उनको विदा करने स्टेशन तक गये। मैंने चरण-रज ली। आशीर्वाद देकर बोले—"देखो, सिगरेट कभी मत पीना, स्कूलके लड़के सिगरेट पीकर बुरी सगतिमें पड़ते हैं।" ब्र० जीका कहना सच था। जिस बातकी चेतावनी उन्होंने मुझे दी थी, वह मेरे छात्र-जीवनमें आगे आई थी। उनकी शिक्षाका ही शायद यह अज्ञात प्रभाव था कि मैं दुर्सगतिमें पड़नेसे बच गया। वह अपने भावुजनोंके चरित्रनिर्माणका पूरा ध्यान रखते थे; क्योंकि वह जानते थे कि कोरी श्रद्धा और छूंछा ज्ञान, चरित्र बिना अधूरे हैं। वह नियम लिवाते थे, परन्तु वही, जिनको लेनेवाला सुगमतासे पाल सके।

'दिगम्बर जैन' और 'जैन-मित्र' के पढ़ते रहनेसे मुझे लेख लिखनेका चाव हुआ। मुझे समाचार-पत्र पढ़नेका शौक 'दिगम्बर जैन' के सचित्र विशेषांकोंसे हुआ। मैंने भी कुछ लिखा। क्या? यह याद नहीं। वह शायद समाजोन्नतिके विषयपर था। डरते-डरते मैंने उसे ब्र० जीके

पास भेज दिया। शायद तब मैंने ठीक-सी हिन्दी भी न लिखी होगी। किन्तु ब्र० जीने उसे 'मित्र' में प्रकाशित कर दिया। अपना लेख पत्रमें छपा हुआ देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं लिखता रहा। परिषद् की स्थापनाके समय 'वीर' के सम्पादकका चुनाव होनेको था। शायद ब्र० जीने ही मेरा नाम तजवीज किया, मैं असमञ्जसमें पड़ गया, शुरूमें इतना बड़ा उत्तरदायित्व मैं कैसे लेता? किन्तु ब्र० जी व्यक्तियोंसे काम लेना जानते थे। मेरे साहसको उन्होंने बढ़ाया। आखिर इस शर्तपर मैंने उनकी बात मानी कि वह सम्पादक रहें और मैं सहायक। वह प्रत्येक अंकमें अपना लेख देते रहें, बाकी मैटर मैं जुटाऊँ! यही हुआ। शायद एक साल वह सम्पादक रहे। बादमें 'वीर' का भार मुझे सौंप दिया! ब्र० जीने मुझे लेखक और सपादक बना दिया—निमित्त उन्होंने जुटाया था।

इटावेके चातुर्मासमें मैं उनकी सत्सगतिका लाभ उठानेके लिए भादोंके महीनेमें वहीं रहा। श्री मुन्नालालजीकी धर्मशालामें ऊपर ब्र० जी ठहरे हुए थे और उसी धर्मशालामें नीचे हम लोग थे। उस समय मुझे ब्र० जीको निकटसे देखनेका अवसर मिला था और मैं ज्यादा न लिखकर यही कहूँगा कि ब्र० जी ओतप्रोत धर्ममय थे। उनमें राष्ट्रधर्म भी था समाजधर्म भी था और आत्मधर्म भी था। उस समय एक दफा उन्हें लगातार दो दिन निर्जल उपवास करना पड़ा, इसमें शारीरिक शिथिलता आना अनिवार्य था। ब्र० जी रातको धर्मोपदेश दिया करते थे। हम लोगोंने यह उचित न समझा कि ब्र० जी वैसी दशामें बोलें। जब उन्होंने सुना, वह मुस्कराये और धर्मोपदेश देनेमें लीन हो गये। उस रोज वह खूब बोले—अध्यात्म रस उन्होंने खूब छलकाया। यह था उनका आत्म-बल!

इटावेके चातुर्मासमें उन्होंने मुझे 'तत्त्वार्थाधिगम सूत्रजी' का अर्थ पढ़ाया। मुझे ही नहीं, इटावेके एक तत्त्वदर्शी अजैन विद्वान्को भी वह जैनधर्मका स्वरूप समझाते रहते थे। आखिर जैनधर्मको उन्होंने ब्र० जीसे पढ़ा। जैनपूजामें भक्तिरसकी निर्मल विशुद्धिका परिचय भी

स्वय पूजा करके उन्होने सबको बताया ! साराश यह कि अज्ञान अन्धकार मेटनेके लिए ब्र० जी सदा प्रयत्नशील रहते थे !

लखनऊमें परिषद्का अधिवेशन था और उसमें मुख्य कार्य एक अजैन क्षत्रियको जैनधर्मकी दीक्षा देना था ! उस क्षत्रियवीरका नाम श्री प्यारेलाल था। ब्र० जीने ही उसको जैनधर्मका श्रद्धालु बनाया था और उन्होने ही उसे जैनधर्मकी दीक्षा दी थी। जैनदीक्षा कार्यका प्रचार उन्होने प्लेटफार्म और प्रेससे ही नही किया, बल्कि स्वय अपने कर्मसे उसे मूर्तिमान् बनाकर दिखाया ! किन्तु जो जैनी आज अपने जन्मत जैनी भाइयोसे मिल-जुलकर एक होनेमे सकोच करते है, उपजातिके मोहमें जैनत्वको भुलाते है, वह भला अजैन बन्धुके जैनधर्ममें आनेपर उसे कैसे गले लगाते ? यही कारण है कि ब्र० जी द्वारा रोपा गया जैनदीक्षाका पवित्र धर्मवृक्ष पल्लवित न होकर सूख गया है। विवेकशील जैनजगत् ही इस वृक्षको फिरसे रोप सकता है !

मेरी इच्छा थी कि ब्र० जी कभी अलीगंज आवें। मैंने उनसे कह भी रक्खा था, परन्तु उस दिन वह जैसे आये, वह उनकी सरलता और समुदारहृदयताका द्योतक है। मै घरमे था—एक लडकेने आकर कहा, "आपके साधुजी धर्मशालाके चबूतरेपर बैठे है।" मेरा माथा ठनका, मनने कहा, क्या ब्र० जी आ गये ? जाकर देखा, सचमुच ब्र० जी आ गये है। वह बोले, "लो, हम तुम्हारे घर आ गये !" इस वत्सलताका भी कोई ठिकाना था। मै सकुचाया-सा रह गया और उन्हे आदरपूर्वक घर लिवा लाया। उस समय स्थितिपालक जैनी ब्र० जीकी स्पष्टवादिता और 'सनातन जैन समाज' की स्थापना करनेके कारण उनसे विमुख-से हो रहे थे। अलीगजमे भी कुछ जैनी इस रगके थे। ब्र० जीका भाषण हुआ, सब सुनने आये, वह भी आये जो उनसे असहमत थे। उनके सयुक्तिक भाषणको सुनकर सब ही प्रभावित हुए !

ब्र० जीको पुरानी वस्तुओको देखने और उनका इतिहास सग्रह करनेकी भी अभिरुचि थी। कम्पिलाजी तीर्थमे जब वह आये, तब हम

भी उनके साथ गये। उससे पहिले भी हम कभी-कभी गये थे, परन्तु वह शोभा न देखी थी, जो उस रोज ब्र० जीके साथ देखी। इसी तरह उटायेमें ब्र० जीने जाना कि असाई खेड़ामें प्राचीन जिनमूर्तियां हैं—वहांके लिए चल पड़े। दोपहर हो गया जब हम लोग वहां पहुंचे, भूख और प्यासकी आकुलता हम लोगोंके मुखोंपर नाच रही थी। किसीने कहा कि जलपान कर लिया जावे, तब स्थानका निरीक्षण किया जावे! ब्र० जी इसे सहन न कर सके। सब लोग चुपचाप उनके पीछे-पीछे चल दिये और चहुं ओर जिनमूर्तियोंका पता लगाते फिरे! ब्र० जीने कई मूर्तियोंके लेखोंकी प्रतिलिपि ली। तभीसे मैंने जाना कि प्रतिलिपि कैसे लेते हैं और प्राचीन लेखों को पढ़नेका भी चाव हुआ!

शायद सन् १९२८ के जाड़ोंमें मैं बम्बई गया था। ब्र० जी जैन बोर्डिङ्गमें ठहरे हुए थे। मैं गया और उनसे मिला। उन्होंने, जैन जाति की उन्नतिके लिए किस तरह निःस्वार्थ सेवक तैयार किये जावें, इसपर बहुत-सी बातें कीं। जैन-सिद्धान्तके विषयमें भी कई बातें बताईं। जैन-भूगोल का ठीकसे अध्ययन नहीं हुआ है, यह भी बताया और कहा कि पृथ्वीको गोल माननेमें एक बाधा आती है और वह यह कि गोलाकारके इतर भाग का जीव ऊर्द्ध्वगतिसे किस प्रकार सिद्धलोकमें पहुंचेगा! इसलिए जैन मान्यता पृथ्वीको नारंगीकी तरह गोल नहीं मान सकती! जीवकी अनन्तराशिपर भी उन्होंने जो कहा वह सरल और जीको रुचनेवाला था। उन्होंने जैन-महिलाओंकी दयनीय दशापर भी अपने विचार दर्शाये। उनके विचारोंसे भले ही कोई सहमत न हो, परन्तु वह वस्तुस्थितिके ज्ञापक और समयकी आवश्यकताके अनुरूप थे, यह हर कोई माननेको बाध्य होगा। उस दिन उन्होंने श्राविकाश्रममें धर्मोपदेश दिया। मैं समझा, ब्र० जी वह पिता हैं जो पुत्र-पुत्रियोंकी समान हितकामनामें हर समय निमग्न रहता है।

जैन-धर्म-प्रचारकी भावना उनके रोम-रोममें समाई थी। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियोंमें जिस प्रकार स्वामी समन्तभद्रजीने भारतके

इस छोरसे उस छोरतक घूमकर धर्मभेरी बजाई थी, उसी प्रकार इस बीसवी शतीमे ब्र० जी ने भारतका कोई कोना बाकी न छोडा, जहाँ उन्होने धर्मामृतकी वर्षा न की हो ! अनेक अजैन विद्वानो और श्रीमानोको उन्होने जैनधर्मके महत्त्वसे अवगत कराया, साधारण जनताको भी उन्होने धर्मका स्वरूप बताया। भारतमें ही नही, वह बर्मा और सीलोन भी धर्म-प्रचारकी भावना लेकर गये और यथाशक्य प्रचार भी किया। यदि सुविधा होती तो वह चीन और जापान भी जाते। यूरुप जाकर धर्म-प्रचार करनेके लिए भी वह तैयार थे, परन्तु उनके साथ एक और जैनी होना जरूरी था जो उनकी सयम-पालनाको निर्विघ्न रखता। यह सुविधा न जुट सकी, इसी कारण वह विलायत न पहुँच पाये। योग्य साथी न मिलनेके कारण वह कैलाशकी यात्रा भी नही कर पाये। जैन-धर्मकी स्थितिका पता लगानेके लिए वह सब तरहकी कठिनाइयां सहन करनेको तत्पर रहते थे।

निस्सन्देह इस शतीके जैनियोमे वह एक ही थे। उनके गुणोका स्मरण कहाँ तक किया जावे ? निस्सन्देह ब्र० जीने जैनियोको सोतेसे जगाया—उन्हे ज्ञानदान दिया और सम्यक् मार्गपर लगाया। वह धर्म और सघके लिए जीये और धर्म एव सघके लिए ही उनका निधन हुआ। वह आधुनिक जैन सघकी अमर विभूति है और उनके स्वर्ण-कार्यो के भारसे जैन-सघ हमेशा उपकृत रहेगा।

—'वीर' सीतल अंक १९४४ ई०

बाबा भागीरथ वर्णी

जन्म— पण्डापुर–मथुरा, १८६८ ई०

समाधिमरण— ईसरी, २६ जनवरी १९४२ ई०

निर्भीक त्यागी

क्षुल्लक गणेशप्रसाद वर्णी

ऐसा निर्भीक त्यागी इस कालमें दुर्लभ है। जबसे आप ब्रह्मचारी हुए, पैसेका स्पर्श नही किया। आजन्म नमक और मीठेका त्याग था। दो लँगोट और दो चादर मात्र परिग्रह रखते थे। एकबार भोजन और पानी लेते थे। प्रतिदिन स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा और समयसारका पाठ करते थे। स्वयम्भू स्तोत्रका भी निरन्तर पाठ करते थे। आपका गला बहुत ही मधुर था, जब आप भजन कहते थे, तब जिस विषयका भजन होता, उस विषयकी मूर्ति सामने आ जाती थी। आपका शास्त्र-प्रवचन बहुत ही प्रभावक होता था। आप ही के उत्साह और सहायतासे स्याद्वादविद्यालयकी स्थापना हुई थी। आपकी प्रकृति अत्यन्त दयालु थी। आप मुझे निरन्तर उपदेश दिया करते थे कि इतना आडम्बर मत कर। एक बारकी बात है, मैंने कहा—"बाबाजी! आपके सदृश हम भी दो चद्दर और दो लँगोट रख सकते हैं, इसमे कौन-सी प्रशसाकी बात है?" बाबाजी बोले—"रख क्यो नही लेते?" मै बोला—"रखना तो कठिन नही है, परन्तु जब बाज़ारसे निकलूंगा, तब लोग क्या कहेंगे? इसीसे लज्जा आती है।" बाबाजीने हँसकर कहा—"बस, इसी बलपर त्यागी बनना चाहते हो? अरे, त्याग करना सामान्य पुरुषोका कार्य नही है। . हाँ यह मै कहता हूँ कि एक दिन तू भी त्यागी बन जायगा। तू सीधा है, अच्छा है, अब इसी रूप रहना।" लिखनेका तात्पर्य्य यही है कि जो कुछ थोडा-बहुत मेरे पास है वह उन्हींके समागमका फल है।

—मेरी जीवन-गाथा पृ० ५८१

निस्पृही

गोयलीय

बूटा-सा कद, तुतई-सा मुंह, गोल और चुन्धी आंखें, दांत ऊबड़-खाबड़, सर घुटा हुआ बैंगन-जैसा गोल, मुंहपर मूंछें नदारद, पांव बेडौल, रग तांबे-जैसा, शरीर कृश और भक्तोंका यह आलम कि गरीब-अमीर, पण्डित-बाबू सभी पाँवोंमें गिरे जा रहे हैं और ये हैं कि निहर-सिहर उठ रहे हैं। अपनी ब्रज मातृभाषामे पाँव छूनेको मना भी करते जा रहे हैं और जो जबरन छूते जा रहे हैं, उन्हें धर्मलाभका आशीर्वाद भी देते जा रहे हैं।

मेरे अहकारने इजाजत नही दी कि मैं इनके पाव पड़ूं। एक तो स्वभावत. मुझे साधु-सन्यासियोंसे वैसे ही विरक्ति-सी रही है। दूसरे बिना परखे-बूझे चाहे जिसके सामने गर्दन झुकानेकी मेरी आदत नही है। इनके त्याग-तपकी अनेक बाते सुनी थी, परन्तु न जाने क्यों विश्वास करनेको जी न चाहा और बात आई-गई हुई।

सम्भवत उक्त बात १९१८ ई० की होगी। ये चौरासी (मथुरा) आये थे। मेरे गुरुदेव प० उमरावसिंहजी न्यायतीर्थ इनके परम भक्त थे और प्रसंग छिडनेपर इनका बडी श्रद्धा-भक्तिसे उल्लेख किया करते थे, परन्तु मुझपर इनका कोई प्रभाव न पडा। हाँ, ढोगी और रँगे हुए नही हैं, यह उस छोटी-सी आयुमे भी जान लिया था।

१९२० के बाद जब मेरा दिल्ली रहना हुआ तो ये कई बार दिल्ली आये-गये। जान-पहचान बढी, पर श्रद्धा-भक्ति न बढ़ी।

१९२९ मे पं० जुगलकिशोर मुख्तारने करोलबाग़ दिल्लीमे वीर-सेवामन्दिरकी स्थापना की। मुझे भी 'अनेकान्त'के प्रकाशन निमित्त वहाँ छह माह रहना पड़ा। उन्ही दिनो बाबाजीने भी दिल्लीमे चातुर्मास किया

था और आश्रममे ही ठहरे थे। आश्रमके नजदीक ही पहाड था, जहाँ लोग शौच आदिको जाते थे। मै आश्रमकी छतपर खडा हुआ था कि देखा १५-२० मिनिटके अन्दर ४-५ वार वावाजी उधरको गये-आये। मनमे वहम-सा हुआ, जाकर देखा तो वहाँ रक्तके पतनाले छूटे हुए है। देखकर जी घवरा गया। हे अरहत, यह वावाजीको क्या हुआ? कोई ऐसी-वैसी चीज तो किसीने नही खिला दी। दौडकर वावाजीके कमरेमें गया तो सहज स्वभाव वोले—"भैया, होतो कहा, ये तो शरीर है, यामें तो हजारो रोग भरे पडे है, कव कौन-सौ उभर आवेगो, याकी सार-सम्भार कौन करे?"

और फिर लोटा लेकर पहाडकी तरफ चलते हुए। मैंने साथ चलते-चलते कहा—"महाराज! मुझे वहकाइये मत। स्पष्ट वताइये कि किस कारण यह सव हुआ है।"

परन्तु वे है कि हँसते हुए पहाडकी तरफ लपके जा रहे है और कहते जा रहे है—"भय्या, तुम तो वावरे हो, या शरीरको कितनो ही खवाओ-पिवाओ पर ऐव देनेसे नाय चूके। पढो नाय तेने—

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादितें मैली।
नव द्वार वहें घिनकारी, अस देह करे किम यारी॥

मै दौडकर शहरसे मुख्य-मुख्य ४-५ जैनियोको वुला लाया। वावा-जीका यह हाल देखकर उनके भी तोते उड गये, दिल धक-धक करने लगा। मेरी खुद नब्ज रुक-रुककर-सी चलने लगी। वावाजीके अचानक खतरेमें पड जानेकी तो चिन्ता थी ही, परन्तु पुलिस खूनकी गन्ध सूँघती हुई आश्रम में आ धमकेगी। वावाजी तो अपनी इच्छासे मर रहे है, और मुझे उनकी सेवा करनेको पुलिस वेमौत उनके पास पहुँचा देगी, यह भय भी कम न था, क्योकि उन दिनो लाहौर और दिल्ली षड्यन्त्रके मुख्य कार्यकर्ता मेरे पास आया-जाया करते थे।

वहुत अनुनय-विनय करनेपर मालूम हुआ कि वावाजी २०-२५ रोजसे भीगे हुए गेहूँ खाकर जीवन-निर्वाह कर रहे है। उन दिनो महात्मा गान्धीने इस तरहका प्रयोग किया था। इन्होने सुना तो ये प्रफुल्ल हो उठे।

"कौन रोजाना आहार करने जानेकी झंझटमें पड़े ? श्रावकोंको तो आहार बनानेमें परेशानी होती ही है, अपना समय भी एक घण्टेसे अधिक व्यर्थ ही चला जाता है। यह महात्माजीने निराकुलताका बहुत सरल उपाय निकाला। बस आध पाव गेहूँ भिगो दिये और खा लिये, फिर २४ घण्टे-को निश्चिन्त। न कहीं जाने-आनेकी चिन्ता, न कहीं गृहस्थोंसे सम्भाषण की परेशानी। इतना समय स्वाध्यायके लिए और मिला।" इन्हीं विचारों में निमग्न होकर किसीको बताये बिना २०-२५ रोजसे भीगे गेहूँ चबा लेते थे। यों तो बाबाजी २५-३० वर्षसे नमक, घी, दूध-दही नहीं खाते थे। केवल उबाले साग और रूखी रोटियां खाते थे। जब जो महात्माजी के इस अनोखे आहारके सम्बन्धमें सुना तो वह उबला साग और अलोनी रोटी भी छोड़ दी।

परन्तु बड़ोंकी बातें बड़ी होती हैं। महात्माजीके ४-५ रोजसे ही खूनी दस्त प्रारम्भ हो गये तो डाक्टरोंने उन्हें भीगे गेहूँ खानेसे मना कर दिया और इसकी सूचना भी नवजीवनमें निकल गई, परन्तु बाबाजीको नवजीवन कौन पढ़कर सुनाता ? उनका क्रम जारी रहा !

अब समझाते हैं तो समझते नहीं, नवजीवन पढ़नेको देते हैं तो पढ़ते नहीं, सुनाते हैं तो हँसकर टाल देते हैं। मैंने रुंधे हुए कण्ठसे निवेदन किया—"महाराज, यह तो महात्माजीकी एक साधना थी। स्वास्थ्यके लिए हानिकर सिद्ध हुई तो उन्होंने तर्क कर दी। वे तो जीवनमें अनेक तरहके प्रयोग करते हैं। आत्मा और मनके लिए अनुकूल हुआ तो जारी रखते हैं, अन्यथा छोड़ देते हैं। आपने भी केवल यही जाननेको कि गेहूँ चबानेसे शरीर चल सकता है या नहीं, महात्माजीके प्रयोगका अनुकरण किया। जब महात्माजी उसे हानिकारक समझकर छोड़ बैठे और जनताको भी इसकी हानिसे अवगत कर दिया तब आपको भी यह प्रयोग छोड़ देना चाहिए।"

गरज़ हमारे दिनभर रोने-धोनेसे तंग आकर उन्हें भीगे गेहूँ छोड़ने पड़े और फिर वही नमक-घी रहित आहार स्वीकार करना पड़ा।

एक रोज सुबह उठकर देखा तो बाबाजी अपने कमरेसे मय अपनी चटाई और कमण्डलके गायब है। बादमे मालूम हुआ कि पहाड़ी-धीरज दिल्लीके श्रावकोंके अनुरोधपर कुछ दिनोके लिए वहाँ चले गये है।

८-१० रोज बाद जाकर देखा तो उनका पाँव टखनेसे लेकर घुटने तक बुरी तरह सूजा हुआ है। उसमेसे पीप और रक्त बह रहे है और बाबाजी ठीकरेसे रगड-रगडकर उसे और भी लहूलुहान कर रहे है और मट्टी थोपते जा रहे है।

मै देखकर खिजलाहटके स्वरमे बोला—"महाराज, किसीको बताया भी नही, दस डाक्टरोका प्रबन्ध किया जा सकता था।" सुनकर खिल-खिलाकर हँसे, फिर बोले—"भैया, तुम तो बड़ी जल्दी घबरा जाते हो, शरीर तो मिट्टी है, मिट्टीमें एक दिन मिल जायगो, याकी चाकरी कवलौ करूँ, तुम ही बताओ ?"

मेरी एक न चली, मिट्टी लगा-लगाकर ही पाँव ठीक कर लिया।

इतना बडा तपस्वी, सयमी, निस्पृही, निरहकारी, क्षमाशील और पूजा-प्रतिष्ठाके लोभका त्यागी मुझे अपने जीवनमे अभी तक दूसरा देखने-को नही मिला।

—'ज्ञानोदय' दिसम्बर १९५०

एक स्मृति

पं० परमानन्द जैन शास्त्री

बाबा भागीरथजी वर्णी जैनसमाजके उन महापुरुषोंमेंसे थे, जिन्होंने आत्मकल्याणके साथ-साथ दूसरोंके कल्याणकी उत्कट भावनाको मूर्त रूप दिया है। बाबाजी जैसे जैनधर्मके दृढश्रद्धानी, कष्टसहिष्णु और आदर्श त्यागी संसारमें विरले ही होते हैं। आपकी कषाय बहुत ही मन्द थी। आपने जैनधर्मको धारणकर उसे जिस साहस एवं आत्मविश्वासके साथ पालन किया है, वह सुवर्णाक्षरोंमें अंकित करने योग्य है। आपने अपने उपदेशों और चरित्रबलसे सैकड़ों जाटोंको जैनधर्ममें दीक्षित किया है—उन्हें जैनधर्मका प्रेमी और दृढश्रद्धानी बनाया है, और उनके आचार-विचार-सम्बन्धी कार्योंमें भारी सुधार किया है। आपके जाट शिष्योंमेंसे शेरसिंह जाटका नाम खास तौरसे उल्लेखनीय है, जो बाबाजीके बड़े भक्त हैं। नगला जिला मेरठके रहनेवाले हैं और जिन्होंने अपनी प्राय. सारी सम्पत्ति जैन-मन्दिरके निर्माण-कार्यमें लगा दी है। इसके सिवाय खतौली और आसपासके दस्सा भाइयोंको जैनधर्ममें स्थित रखना आपका ही काम था। आपने उनके धर्मसाधनार्थ जैनमन्दिरका निर्माण भी कराया है। आपके जीवनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि आप अपने विरोधी पर भी सदा समदृष्टि रखते थे और विरोधके अवसर उपस्थित होने पर माध्यस्थ्य वृत्तिका अवलम्बन लिया करते थे और किसी कार्यके असफल होने-पर कभी भी विषाद या खेद नहीं करते थे। आपको भवितव्यताकी अलंघ्य शक्ति पर दृढ विश्वास था। आपके दुबले-पतले शरीरमें केवल अस्थियोंका पंजर ही अवशिष्ट था, फिर भी अन्त समयमें आपकी मानसिक सहिष्णुता और नैतिक साहसमें कोई कमी नहीं हुई थी। त्याग और तपस्या आपके जीवनका मुख्य ध्येय था, जो विविध प्रकारके संकटों-विपत्तियोंमें भी आपके विवेकको सदा जाग्रत (जागरूक) रखता था। खेद है कि वह आदर्श त्यागी आज अपने भौतिक शरीरमें नहीं है, उनका ईसरीमें २६ जनवरी सन् ४२ को समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवास हो गया

है ! फिर भी उनके त्याग और तपस्याकी पवित्र स्मृति हमारे हृदयको पवित्र बनाये हुए है और वीरसेवामन्दिरमे आपका ३॥ मासका निवास तो बहुत ही याद आता है।

बाबाजीका जन्म स० १९२५ मे मथुरा जिलेके पण्डापुर नामक ग्राममे हुआ था। आपके पिताका नाम बलदेवदास और माताका मानकौर था। तीन वर्षकी अवस्थामे पिताका और ग्यारह वर्षकी अवस्थामे माताका स्वर्गवास हो गया था। आपके माता-पिता गरीब थे, इस कारण आपको शिक्षा प्राप्त करनेका कोई साधन उपलब्ध न हो सका। आपके माता-पिता वैष्णव थे। अत: आप उसी धर्मके अनुसार प्रात काल स्नान कर यमुना-किनारे राम-राम जपा करते थे और गीली धोती पहने हुए घर आते थे। इस तरह आप जब चौदह-पन्द्रह वर्षके हो गय, तब आजीविका के निमित्त दिल्ली आये। दिल्लीमे किसीसे कोई परिचय न होनेके कारण सबसे पहले आप मकानकी चिनाईके कार्यमे ईटोको उठाकर राजोको देने का कार्य करने लगे। उससे जब ५-६ रुपये पैदा कर लिये, तब उसे छोडकर तौलिया रुमाल आदिका बेचना शुरू कर दिया। उस समय आपका जैनियोंसे बडा द्वेष था। बाबाजी जैनियोंके मुहल्लेमे ही रहते थे और प्रतिदिन जैनमन्दिरके सामनेसे आया-जाया करते थे। उस रास्ते जाते हुए आपको देखकर एक सज्जनने कहा कि आप थोडे समयके लिए मेरी दुकानपर आ जाया करो। मै तुम्हे लिखना-पढना सिखा दूंगा। तबसे आप उनकी दुकानपर नित्यप्रति जाने लगे। इस ओर लगन होनेसे आपने शीघ्र ही लिखने-पढ़नेका अभ्यास कर लिया।

एक दिन आप यमुनास्नानके लिए जा रहे थे, कि जैनमन्दिरके सामनेसे निकले। वहाँ 'पद्मपुराण' का प्रवचन हो रहा था। रास्तेमे आपने उसे सुना, सुनकर आपको उससे बडा प्रेम हो गया और आपने उन्ही सज्जन की मार्फत पद्मपुराणका अध्ययन किया। इसका अध्ययन करते ही आपकी दृष्टिमे सहसा नया परिवर्तन हो गया और जैनधर्मपर दृढ श्रद्धा हो गई। अब आप रोज जिनमन्दिर जाने लगे तथा पूजन-स्वाध्याय

नियमसे करने लगे। इन कार्योंमे आपको इतना रस आया कि कुछ दिन पश्चात् आप अपना धन्धा छोडकर त्यागी बन गये, और आपने दान-ब्रह्मचारी रहकर विद्याभ्यास करनेका विचार किया। विद्याभ्यास करनेके लिए आप जयपुर और खुर्जा गये। उस समय आपकी उम्र पच्चीस वर्षकी हो चुकी थी। खुर्जामे अनायास ही पूज्य प० गणेशप्रसादजीका समागम हो गया, फिर तो आप अपने अभ्यासको और भी लगन तथा दृढ़ताके साथ सम्पन्न करने लगे। कुछ समय धर्मशिक्षाको प्राप्त करनेके लिए दोनो ही आगरेमे प० बलदेवदासजीके पास गये और पूज्यपादकी सर्वार्थसिद्धिका पाठ प्रारम्भ हुआ। पश्चात् प० गणेशप्रसादजीकी इच्छा अजैन न्यायके पढनेकी हुई, तब आप दोनो बनारस गये और वहाँ भेलूपुरा की धर्मशालामे ठहरे।

एक दिन आप दोनो प्रमेयरत्नमाला और आप्तपरीक्षा आदि जैन न्याय-सम्बन्धी ग्रन्थ लेकर प० जीवनाथ शास्त्रीके मकान पर गये। सामने चौकी पर पुस्तकें और १ रु० गुरुदक्षिणा स्वरूप रख दिया, तब शास्त्री-जीने कहा—"आज दिन ठीक नही है कल ठीक है।" दूसरे दिन पुनः निश्चित समय पर उक्त शास्त्रीजीके पास पहुँचे। शास्त्रीजी अपने स्थानसे पाठ्य स्थान पर आये और आसन पर बैठते ही पुस्तकें और रुपया उठाकर फेंक दिया और कहने लगे कि "मै ऐसी पुस्तकोका स्पर्श तक नही करता।" इस घटनासे हृदयमे क्रोधका उद्वेग उत्पन्न होने पर भी आप दोनो कुछ न कह सके और वहाँसे चुपचाप चले आये। अपने स्थान पर आकर सोचने लगे कि यदि आज हमारी पाठशाला होती तो क्या ऐसा अपमान हो सकता था? अब हमे यही प्रयत्न करना चाहिए, जिससे यहाँ जैनपाठशालाकी स्थापना हो सके और विद्याके इच्छुक विद्यार्थियोको विद्याभ्यासके समु-चित साधन सुलभ हो सके। यह विचार कर ही रहे थे कि उस समय कामा मथुराके ला० झम्मनलालने, जो धर्मशालामे ठहरे हुए थे, आपका शुभ विचार जानकर एक रुपया प्रदान किया। उस एक रुपयेके ६४ कार्ड खरीदे गये, और ६४ स्थानोको अभिमत कार्यकी प्रेरणारूपमे डाले गये।

फलस्वरूप बा० देवकुमारजी आराने अपनी धर्मशाला भदैनी घाटमें पाठशाला स्थापित करनेकी स्वीकृति दे दी। और दूसरे सज्जनोने रुपये आदिके सहयोग देनेका वचन दिया। इस तरह इन युगल महापुरुषोकी सद्भावनाएँ सफल हुई और पाठशालाका कार्य छोटे-से रूपमे शुरू कर दिया गया। बाबाजी उसके सुपरिण्टेण्डेण्ट बनाये गये। यही स्याद्वादमहाविद्यालयके स्थापित होनेकी कथा है, जो आज भारतके विद्यालयो मे अच्छे रूपसे चल रहा है और जिसमे अनेक ब्राह्मण शास्त्री भी अध्यापन कार्य करते आ रहे है। इसका पूरा श्रेय इन्ही दोनो महापुरुषोको है।

पूज्य बाबा भागीरथजी वर्णी, और पूज्य प० गणेशप्रसादजी वर्णीका जीवनपर्यन्त प्रेमभाव बना रहा। बाबाजी हमेशा यही कहा करते थे कि प० गणेशप्रसादजीने ही हमारे जीवनको सुधारा है। बनारसके बाद आप देहली, खुर्जा, रोहतक, खतौली, शाहपुर आदि जिन-जिन स्थानो पर रहे, वहाँकी जनताका धर्मोपदेश आदिके द्वारा महान् उपकार किया है।

बाबाजीने शुरूसे ही अपने जीवनको निःस्वार्थ और आदर्श त्यागीके रूपमें प्रस्तुत किया है। आपका व्यक्तित्व महान् था। जैनधर्मके धार्मिक सिद्धान्तोका आपको अच्छा अनुभव था। समाधितत्र, इष्टोपदेश, स्वामिकार्तिकेयानुपेक्षा, वृहत्स्वयभूस्तोत्र और आप्तमीमासा तथा कुन्दकुन्दाचार्यके ग्रन्थोके आप अच्छे मर्मज्ञ थे, और इन्हीका पाठ किया करते थे। आपकी त्यागवृत्ति बहुत बढ़ी हुई थी। ४० वर्षसे नमक और मीठेका त्याग था, जिह्वा पर आपका खासा नियन्त्रण था, जो अन्य त्यागियोमें मिलना दुर्लभ है। आप अपनी सेवा दूसरोसे कराना पसन्द नही करते थे। आपकी भावना जैनधर्मको जीवमात्रमें प्रचार करनेकी थी और आप जहाँ कही भी जाते थे, सभी जातियोके लोगोसे मास-मदिरा आदिका त्याग करवाते थे। जाट भाइयोमे जैनधर्मके प्रचारका और दस्सोको अपने धर्ममें स्थित रहनेका जो ठोस सेवाकार्य किया है, उसका समाज चिरऋणी रहेगा।

—अनेकान्त, मार्च, १९४२

पूज्य काकाजी

श्री खुशालचन्द्र गोरावाला

बाबाजी विहार करते हुए सवत् १९८२ के अगहनमे मडावरा (झासी) पधारे थे। मै उस समय महरौनीमे दर्जा ६ (हिन्दी मिडिल)मे पढ़ता था, लेकिन श्री १०८ मुनि सूर्यसागरजी विहार करते मडावरा पहुँचे थे, इसलिए आहार-दानमे सहायता देनेके लिए माताजीने मुझे भी गाँव बुला लिया था। सयोगकी बात है कि जिस दिन स्व० बाबाजी मडावरा पधारे, उस दिन मुनि महाराजका मेरे घर आहार हुआ था और मै आहारदाता था। फलत अगवानीके समय ही लोगोने परिचय देकर मुझे बाबाजीकी अनुग्रहदृष्टिका पात्र बना दिया था। बाबाजी इस बार जितने दिन मड़ावरा रहे, उतने दिन मै यथायोग्य उनकी परिचर्यामें उपस्थित रहा। एक दिन अपराह्नमे बाबाजी अन्य त्यागियोकी प्रेरणाके कारण ग्रामका ऊजड किला देखने गये। साथमे अनेक बालकोके साथ मै भी था, उस समय मैने किलेसे सम्बद्ध कुछ ऐतिहासिक किवदन्तियाँ बाबाजीको सुनाईं। एकाएक बाबाजीने पूछा "तुम क्या पढ़ते हो ?" मेरे उत्तर देनेपर उन्होने पूछा "मिडिलके बाद क्या पढ़ोगे ?" "घरके लोगोका अग्रेजी पढानेका इरादा है।" उत्तर सुनते ही बोले—"तुम्हारे गाँवके ही पडित गणेशप्रसादजी वर्णी है, इसलिए धर्म जरूर पढ़िओ।" इसके बाद और क्या-क्या हुआ सो तो मुझे याद नही, पर इतना याद है कि मिडिलका नतीजा निकलने पर जब मँझले भइयाने ललितपुर भेजनेकी चर्चा की तो काकाजीने कहा—"क्रिस्तान नही बनाना है, धर्म पढ़ेगा।" मै आज सोचता हूँ कि मेरी तरह न जाने कितने और बालकोको धार्मिक शिक्षा बाबाजी की ही उस सत्य प्रेरणासे मिली है, जिसे उनका सहधर्मी वात्सल्य कराता था।

मनुष्यके स्वभावका अध्ययन करनेमे तो वर्णीजीको एक क्षण भी नही लगता। यही कारण है कि वे विविध योग्यताओके पुरुषोसे सहज ही विविध कार्य करा सके है। यह भी समझना भूल होगी कि यह योग्यता उन्हे अब प्राप्त हुई है। विद्यार्थी जीवनमें बाईजीके मोतियाबिन्दकी चिकित्सा कराने किसी बगाली डाक्टरके पास झाँसी गये। डाक्टरने यो ही कहा– "यहाँके लोग बडे चालाक होते है," फिर क्या था माता-पुत्र उसकी लोभी प्रकृतिको भाँप गये और चिकित्साका विचार ही छोड दिया। बादमें उस क्षेत्रके सब लोगोने भी बताया कि वह डाक्टर बडा लोभी था, किन्तु धर्ममाताकी व्यथाके कारण वर्णीजी दुखी थे, उन्हें स्वस्थ देखना चाहते थे। तथापि उनकी आज्ञा होने पर बनारस गये और परीक्षामे बैठे तो कि मन न लग सकनेके कारण असफल रहे। लौटने पर बागमे एक अग्रेज़ डाक्टरसे भेट हुई। वर्णीजीको उसके विषयमें अच्छा ख्याल हुआ। उससे बाईजीकी आँखका आपरेशन कराया और बाईजी ठीक हो गई। इतना ही नही वह इनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने रविवारको मासाहारका त्याग कर दिया तथा कपडोकी स्वच्छता आदिको भोजन-शुद्धिका अग बनानेका इनसे भी आग्रह किया।

वर्णीजीका दूसरा विशेष गुण गुणग्राहकता है, जिसका विकास भी छात्रावस्थामें ही हुआ था। जब वे चकौती (दरभगा) मे अध्ययन करते थे, तब द्रौपदी नामकी भ्रष्ट बालविधवामें प्रौढावस्था आने पर जो एकाएक परिवर्तन हुआ, उसने वर्णीजी पर भी अद्भुत प्रभाव डाला। वे जब कभी उसकी चर्चा करते है तो उसके दूषित जीवनकी ओर सकेत भी नही करते है और उसके श्रद्धानकी प्रशसा करते है। बिहारी मुसहरकी निर्लोभिता तो वर्णीजीके लिए आदर्श है। अल्पवित्त, अपढ होकर भी उसने उनसे दस रुपये नही ही लिये क्योकि वह अपने औषधिज्ञानको सेवार्थ मानता था। घोर-से-घोर घृणोत्पादक अवसरोने वर्णीजीमें विरक्ति और दयाका ही सचार किया है, प्रतिशोध और क्रोध कभी भी उनके विवेक और सरलताको नही भेद सके है। नवद्वीपमे जब कहारिनसे मछलीका

आख्यान सुना तो वहाँके नैयायिकोसे विशेष ज्ञान प्राप्त करनेके प्रलोभनको छोड़कर सीधे कलकत्ता पहुँचे। और वहाँके विद्वानोसे भी छह मास अध्ययन किया। इस प्रकार यद्यपि वर्णीजीने तब तक न्यायाचार्यके तीन ही खण्ड पास किये थे, तथापि उनका लौकिक ज्ञान खण्डातीत हो चुका था। तथा उन्होने अपने भावी जीवनक्षेत्र—जैन समाजमे शिक्षाप्रचार तथा मूक सुधारके लिए अपने आपको भली भाँति तैयार कर लिया था।

जानो और जानने दो—

कलकत्तेसे लौटकर जब बनारस होते हुए सागर आये तो वर्णीजीने देखा कि उनका जन्म-जनपद शिक्षाकी दृष्टिसे बहुत पिछड़ा हुआ है। जब नैनागिरकी तरफ़ विहार किया तो उनका आत्मा तडप उठा। बगाल और बुन्देलखंडकी बौद्धिक विषमताने उनके अन्तस्तलको आलोडित और आन्दोलित कर दिया। रथयात्रा, जलयात्रा, आदिमें हजारो रुपया व्यय करनेवालोको शिक्षा और शास्त्र-दानका विचार भी नहीं करते देखकर वे अवाक् रह गये। उन्होने देखा कि भोजन-पान तथा लैङ्गिक सदाचारको दृढतासे निभाकर भी समाज भाव—आचारसे दूर चला जा रहा है। साधारण-सी भूलोंके लिए लोग बहिष्कृत होते है और आपसी कलह होती है। प्रारम्भमें किसी विधवाको रख लेनेके कारण ही 'विनैकावार' होते थे, पर हलवानीमे सुन्दर पत्नीके कारण बहिष्कृत, दिगौडे-मे दो घोडोकी लडाईमे दुर्बल घोडेके मरने पर सबल घोड़े वालेको दण्ड, आदि घटनाओने वर्णीजीको अत्यन्त सचिन्त कर दिया था। हरदीके रघुनाथ मोदी वाली घटना भी इन्ही सब बातोकी पोषक थी। उनके मनमे आया कि ज्ञान बिना इस जडतासे मुक्ति नही। फलत. आपने सबसे पहिले बंडा (सागर, म० प्रा०) में पाठशाला खुलवाई। इसके बाद जब आप ललितपुरमे इस चिन्तामे मग्न थे कि किस प्रकार उस प्रान्त के केन्द्रस्थानोमें सस्थाएँ स्थापित की जाये, उसी समय श्री सवालनवीसने सागरसे आपको बुलाया। सयोगकी बात है कि आपके साथ पं० सहदेव झा भी थे। फलतः श्री कण्डयाके प्रथम दानके मिलते ही अक्षय-तृतीया

को प्रथम छात्र प० मुन्नालाल रावेलीयकी शिक्षासे सागरमें श्री 'सत्तर्क-सुधा-तरंगिणी पाठशाला' का प्रारम्भ हो गया। गगाकी विशाल धाराके समान इस सस्थाका प्रारम्भ भी बहुत छोटा-सा था। स्थान आदिके लिए मोराजी भवन आनेके पहिले इस सस्थाने जो कठिनाइयाँ उठाईं, वास्तव में वे वर्णीजी ऐसे वद्धपरिकर व्यक्तिके अभावमे इस सस्थाको समाप्त कर देनेके लिए पर्याप्त थी। आर्थिक व्यवस्था भी स्थानीय श्रीमानोकी दुकानोसे मिलनेवाले एक आना सैकटा धर्मादाके ऊपर आश्रित थी। पर इस सस्थाके वर्तमान विशाल प्राङ्गण, भवन आदिको देखकर अनायास ही वर्णीजीके सामने दर्शकका शिर झुक जाता है। आज जैन-समाजमें बुन्देलखण्डीय पडितोका प्रबल बहुमत है, उसके कारणोका विचार करने-पर सागरका यह विद्यालय तथा वर्णीजीकी प्रेरणासे स्थापित साढूमल, पपौरा, मालथौन, ललितपुर, कटनी, मड़ावरा, खुरई, बीना, वरुआसागर, आदि स्थानोके विद्यालय स्वय सामने आ जाते है। वस्तुस्थिति यह है कि इन पाठशालाओने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा देनेमें बड़ी तत्परता दिखाई है। इन सबमे सागर विद्यालयकी सेवाएँ तो चिरस्मरणीय है।

वर्णीजीने पाठशाला स्थापनाके तीर्थका ऐसे शुभ मुहूर्तमें प्रवर्तन किया था कि जहाँसे वे निकले वही पाठशालाएँ खुलती गई। यह स्थानीय समाजका दोष है कि इन सस्थाओको स्थायित्व प्राप्त न हो सका। इसका वर्णीजीको खेद है। पर समाज यह न सोच सका कि प्रान्त भरके लिए व्याकुल महात्माको एक स्थानपर बाँध रखना अनुचित है। उनके सकेत पर चलकर आत्मोद्धार करना ही उसका कर्त्तव्य है। तथापि वर्णित्रय (पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी, बाबा भगीरथ वर्णी और प० दीपचन्दजी वर्णी) के सतत प्रयास तथा विशुद्ध पुरुषार्थने बुन्देलखण्ड ही क्या अज्ञान-अन्धका-राच्छन्न समस्त जैन-समाजको एक समय विद्यालय पाठशाला रूपी प्रकाश-स्तभोसे आलोकित कर दिया था। इसी समय वर्णीजीने देखा कि केवल प्राच्य शिक्षा पर्याप्त नही है, फलत योग्य अवसर आते ही आपने जबलपुर 'शिक्षा-मन्दिर' तथा जैन-विश्व विद्यालयकी स्थापनाके प्रयत्न किये।

यह सच है कि जबलपुरकी स्थानीय समाजके निजी कारणोंसे प्रथम प्रयत्न तथा समाजकी दलबन्दी एव उदासीनताके कारण द्वितीय प्रयत्न सफल न हो सका, तथापि उसने ऐसी भूमिका तैयार कर दी है जो भावी साधकों के मार्गको सुगम बनावेगी। आज भी वर्णीजी बौद्धिक विकासके साथ कर्मठताका पाठ पढानेवाले गुरुकुलों तथा साहित्य प्रकाशक सस्थाओंकी स्थापना व पोषणमे दत्तचित्त हैं। ऊपरके वर्णनसे ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वर्णीजीने मातृमण्डलकी उपेक्षा की, पर ध्रुव सत्य यह है कि वर्णीजीका पाठशाला आन्दोलन लड़के-लड़कियोंके लिए समान रूपसे चला है। इतना ही नही ज्ञानी-त्यागी मार्गका प्रवर्तन भी आपके दीक्षा-गुरु बाबा गोकुलचन्द्र (पितुश्री प० जगमोहनलालजी सिद्धान्तशास्त्री) तथा आपने किया है।

पर स्वारथके कारने—

आश्चर्य तो यह है कि जो वर्णीजी पैसा पास न होने पर हफ्तो कच्चे चने खाकर रहे और भूखे भी रहे और अपनी माता (स्व० चिरोंजाबाईजी) से भी किसी चीजको माँगते शरमाते थे, उन्हींका हाथ पारमार्थिक सस्थाओंके लिए माँगनेको सदैव फैला रहता है। इतना ही नही, सस्थाओका चन्दा उनका ध्येय बन जाता था। यदि ऐसा न होता तो सागरमें सामायिकके समय तन्द्रा होते ही चन्देकी लपकमें उनका शिर क्यो फूटता। पारमार्थिक सस्थाओंकी झोली सदैव उनके गलेमे पड़ी रही है। आपने अपने शिष्योके गले भी यह झोली डाली है। पर उन्हे देखकर वर्णीजीकी महत्ता हिमालयके उन्नत भालके समान विश्वके सामने तन कर खड़ी हो जाती है। क्योकि उनमें **"मर जाऊँ माँगूँ नही अपने तनके काज।"** का वह पालन नही है जो पूज्य वर्णीजीका मूलमत्र रहा है। वर्णीजीकी यह विशेषता रही है कि जो कुछ इकट्ठा किया वह सीधा सस्था-विकारियोंको भिजवा दिया और स्वय निर्लिप्त। वर्णीजीके निमित्त से इतना अधिक चन्दा हुआ है कि यदि वह केन्द्रित हो पाता तो उससे विश्वविद्यालय सहज ही चल सकता? तथापि इतना निश्चित है कि

असली (ग्रामीण) भारतमें ज्योति जगानेका जो श्रेय उन्हें है, वह विश्व-विद्यालयके संस्थापकोंको नहीं मिल सकता। क्योंकि वर्णीजीका पुरुषार्थ नदी, नाले और कूप-जलके समान गाँव-गाँवको जीवन दे रहा है।

वर्णीजीको दयाकी मूर्ति कहना अयुक्त न होगा। उनके हृदयका करुणास्रोत दीन-दुःखीको देखकर अबाधगतिसे बहता है। दीन या आक्रान्त को देखकर उनका हृदय तड़प उठता है। यह पात्र है या अपात्र यह वे नहीं सोच सकते, उसकी सहायता उनका चरम लक्ष्य हो जाता है। लोग वेश बनाकर वर्णीजीको आज भी ठगते हैं, पर बाबाजी **"कर्तुं वृथा प्रणयभस्य न पारयन्ति।"** के अनुसार **"अरे भइया हमें वो का ठगौ जो अपने आपको ठग रहो।"** कथनको सुनते ही आज भी दयामय वर्णीके विविध रूप सामने नाचने लगते हैं। यदि एक समय लुहारसे सँडसी माँगकर लकड़हारिनके पैरसे खजूरका काँटा निकालते दिखते हैं तो दूसरे ही क्षण बहेरिया ग्रामके कुआँपर दरिद्र दलित वर्गके बालकको अपने लोटेसे जल तथा मेवा खिलाती मूर्ति सामने आ जाती है, तीसरे क्षण मार्गमें ठिठुरती स्त्रीकी ठंड दूर करनेके लिए लँगोटीके सिवा समस्त कपड़े शरीर परसे उतार फेंकती श्यामल मूर्ति झलकती है, तो उसके तुरन्त बाद ही लकड़हारेके न्याय-प्राप्त दो आना पैसोंको लिए, तथा प्रायश्चित्त रूपसे सेर भर पक्वान्न लेकर गर्मीकी दुपहरीमें दौड़ती हुई पसीनेसे लथपथ मूर्ति आँखोंके आगे नाचने लगती है। करैयापुरके कुँएपर वर्णीजी पानी पीकर चलना ही चाहते हैं कि दृष्टि पास खड़े प्यासे मिहतरपर ठिठक जाती है। दया उमड़ी और लोटा कुएँ से भरकर पानी पिलाने लगे, लोकापवादभय मनमें जागा और लोटा-डोर उसीके सिपुर्द करके चलते बने। स्थितिपालन और सुधारका अनूठा समन्वय इससे बढ़कर कहाँ मिलेगा?

जो संसार विषै सुख होतो–

इस प्रकार बिना विज्ञापन किये जब वर्णीजीका चरित्र निखर रहा था, तभी कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिन्होंने उन्हें बाह्यत्याग तथा व्रतादि ग्रहणके लिए प्रेरित किया। यदि स्व० सिंघैन चिरोंजाबाईजीका वर्णीजी

पर पुत्र-स्नेह लोकोत्तर था तो वर्णीजीकी मातृश्रद्धा भी अनुपम थी। फलत. बाईजीके कार्यको कम करनेके लिए तथा प्रिय भोज्य सामग्री लाने के लिए वे स्वय ही बाजार जाते थे। सागरमे शाक फलादि कूँजडिने बेचती है। और मुँहकी वे जितनी अशिष्ट होती है जानकारी उतनी ही पक्की होती है। एक किसी ऐसी ही कूँजडिनकी दुकानपर दो सुन्दर घडे शरीफा रखे थे। एक रईस उनका मोल कर रहे थे और कूँजडिनका मुँह मांगा मूल्य एक रुपया नही देना चाहते थे, आखिरकार ज्यो ही वे दुकानसे आगे बढे वर्णीजीने जाकर वे शरीफे खरीद लिये। लक्ष्मी-वाहनने उनमें अपनी हेठी समझी और अधिक मूल्य देकर शरीफे वापस पानेका प्रयत्न करने लगे। कूँजडिनने इस पर उन्हे आडे हाथो लिया और वर्णीजीको शरीफे दे दिये। उसकी इस निर्लोभिता और वचनकी दृढताका वर्णीजी पर अच्छा प्रभाव पडा और बहुधा उसीके यहाने शाक सब्जी लेने लगे। पर चोर यदि दुनियाको चोर न समझे तो कितने दिन चोरी करेगा? फलत स्वय दुर्बल और भोग-लिप्त मानवोमे इस बातकी कानाफूसी प्रारम्भ हुई, वर्णीजीके कानमे उसकी भनक आई। सोचा, मनार! तू तो अनादि कालसे ऐसा ही है, मार्ग तो मै ही भूल रहा हूँ, जो शरीरको सजाने और खिलानेमे सुख मानता हूँ। यदि ऐसा नही तो उत्तम वस्त्र, आठ रुपया सेरका सुगधित चमेलीका तेल, बडे-बडे बाल, आदि विडम्बना क्यो? और जब स्वप्नमे भी मनमे पापमय प्रवृत्ति नही तो यह विडम्बना शत-गुणित हो जाती है। प्रतिक्रिया इतनी बढी कि श्री छेदीलालके बगीचेमें जाकर आजीवन ब्रह्मचर्यका प्रण कर लिया। मोक्षमार्गका पथिक अपने मार्गकी ओर बढा तो लौकिक बुद्धिमानोने अपनी नेक सलाहे दी। वे सब इस व्रतग्रहणके विरुद्ध थी तथापि वर्णीजी अडोल रहे।

इस व्रत-ग्रहणके पश्चात् उनकी वृत्ति कुछ ऐसी अन्तर्मुख हुई कि पतितोका उद्धार, अन्तर्जातीय विवाह आदिके विषयमे शास्त्रसम्मत मार्गपर चलनेका उपदेशादि देना भी उनके मनको संतुष्ट नही करता था। यद्यपि इन दिनो भी प्रति वर्ष वे परवार-सभाके अधिवेशनोमे जाते थे, तथा बाबा

सीतलप्रसादजीके विधवा-विवाह आदि ऐसे प्रस्तावोका शास्त्रीय आधार से खण्डन करते थे। बुन्देलखण्डके अच्छे सार्वजनिक आयोजन उनके विना न होते थे। तथापि उनका मन बेचैन था। इन सबमें आत्मशान्ति न थी। व्यक्तिगत कारणसे न सही समष्टिगत हितकी भावनासे ही विरोध और विद्वेषको अवसर मिलता था। ऐसे ही समय वर्णीजी बाबा गोकुलचन्द्रजीके साथ कुण्डलपुर (सागर म० प्रा०) गये। यहाँ पर भी बाबाजीने उदासीनाश्रम खोल रखा था। वर्णीजीने अपने मनोभाव बाबाजीसे कहे और सप्तम 'प्रतिमा' धारण करके पदसे भी अपने आपको वर्णी बना दिया। ज्ञान और त्यागका यह समागम जैन-समाजमे अद्भुत था। अब वर्णीजी व्रतियोके भी गुरु थे, और सामाजिक विरोध तथा विद्वेषसे बचनेकी अपेक्षा उसमे पडनेके अवसर अधिक उपस्थित हो सकते थे, किन्तु वर्णीजीकी उदासीनतासे अनुगत विनम्रता ऐसे अवसर सहज ही टाल देती थी। तथा वर्णी होकर भी उनके सार्वजनिक कार्य दिन दूने रात चौगुने बढते जाते थे।

लोग कहते है "पुण्य तो वर्णीजी न जाने कितना करके चले है। ऐसा सातिशय पुण्यात्मा तो देखा ही नही। क्योकि जब जो चाहा मिला, या जो कह दिया वही हुआ" ऐसी अनेक घटनाएँ उनके विषयमे सुनी है। नैनागिर ऐसे पर्वतीय प्रदेशमे उनके कहनेके बाद घटे भरमे ही अकस्मात् अगूर पहुँच जाना, बडगैनीके मन्दिरकी प्रतिष्ठाके समय सूखे कुँओका पानीसे भर जाना, आदि ऐसी घटनाएँ है, जिन्हे सुनकर मनुष्य आश्चर्यमे पड जाता है।

काहेको होत अधीरा रे--

जब वर्णीजी उक्त प्रकारसे समाजका सम्मान और पूजा तथा मातुश्री बाईजीके मातृस्नेहका अविरोधेन रस ले रहे थे, उसी समय बाईजी का एकाएक स्वास्थ्य बिगडा। विवेकी वर्णीजीकी आँखोके आगे आद्य-मिलनसे तब तककी घटनाएँ घूम गई और कल्पना आई प्रकृत्या विवेकी, बुद्धिमान्, दयालु तथा व्यवस्था-प्रेमी बाईजी शायद अब और

मेरे ऊपर अपनी स्नेह-छाया नही रख सकेंगी। उनका सरल हृदय भर आया और आँखे छलछला आई, विवेक जागा," माता ! तुमने क्या नही दिया और क्या नही किया ? अपने उत्थानका उपादान तो मुझे ही बनना है। आपके अनन्त फलदायक निमित्तको न भूल सकूंगा तथापि प्रारब्धको टालना भी सभव नही।" फलत अनन्त मातृ-वियोगके लिए अपनेको प्रस्तुत किया। बाईजीने सर्वस्व त्याग कर समाधिमरण पूर्वक अपनी इहलीला समाप्त की। विवेकी लोकगुरु वर्णीजी भी रो दिये और अन्तरगमे अनन्त-वियोग-दु.ख छिपाये सागरसे अपने परम प्रिय तीर्थक्षेत्र द्रोणगिरिकी ओर चल दिये। पर कहाँ है शान्ति ? मोटरकी अगली सीटके लिए कहा-सुनी क्या हुई, राजर्षिने सवारीका ही त्याग कर दिया। सागर वापस आये तो बाईजीकी "भैया भोजन कर लो" आवाज फिर कानोमे आने-सी लगी। सोचा, मोहनीय अपना प्रताप दिखा रहा है। फिर क्या है अपने मनको दृढ किया और अबकी बार पैदल निकल पडे वास्तविक विरक्तिकी खोजमें। फिर क्या था गाँव-गाँवने बाईजीके लाडलेसे ज्योति पाई। यदि सवारी न त्यागते, पैसेवाले भक्त लोग आत्म-सुधारके बहाने उन्हे वायुयान पर लिये फिरते, पर न रहा बाँस, न रही बाँसुरी। वर्णीजी झोपडी-झोपड़ीमे शान्तिका सन्देश देते फिरने लगे और पहुँचे हजारो मील चलकर गिरिराज सम्मेदशिखरके अचलमे। शायद पूजनीया बाईजी जो जीवित रहके न कर सकती वह उनके मरणने सभव कर दिया। यद्यपि वर्णीजीको यह कहते सुना है "मुझे कुछ स्वदेश (स्वजनपद)का अभिमान जाग्रत हो गया और वहाँके लोगोके उत्थान करनेकी भावना उठ खडी हुई। लोगोके कहनेमे आकर फिरसे सागर जानेका निश्चय कर लिया। इस पर्यायमें हमसे यह महती भूल हुई, जिसका प्रायश्चित्त फिर शिखरजी जानेके सिवाय अन्य कुछ नही, चक्रमें आ गया।" तथापि आज वर्णीजी न व्यक्तिसे बँधे है न प्रान्त या समाजसे, उनका विवेक और विरक्तिका उपदेश जलवायुके समान सर्वसाधारणके हिताय है।

—वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ

अणोरणीयान् महतो महीयान्

पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

पूज्य क्षुल्लक श्री गणेशप्रसादजी वर्णीकी उपमा देवताओमेसे यदि किसीसे दी जा सकती है तो शिवजीसे। शिवजीके बाबा भोलानाथ, विश्वनाथ आदि अनेक नाम है और ये नाम वर्णीजीमे भी घटित होते है। वे सदा सबका कल्याण करनेमें तत्पर है। कोई भी व्यक्ति अपना दु ख-दर्द उनके सामने रखकर उनसे क्रियात्मक सहानुभूति प्राप्त कर सकता है। वे किसीको मना करना जानते ही नही। उनके मुखसे सबके लिए एक ही शब्द निकलता है—'हओ भैय्या।' और राजाओमेसे यदि किसीसे उनकी उपमा दी जा सकती है तो राजा भोजसे। राजा भोज विद्वानोके लिए कल्पवृक्ष था। एक बार किसीने यह अफवाह उडा दी कि राजा भोज मर गये। विद्वानोमे कुहराम मच गया और एक विद्वान् के मुखसे निकल पडा—

'अद्य धारा निराधारा, निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते ॥*'

इतनेमे ही ज्ञात हुआ कि अफवाह झूठी थी, राजा भोज सकुशल है। तब वही विद्वान् कह उठा—

---

* अर्थात् 'आज राजा भोजका स्वर्गवास हो जानेसे धारा नगरी निराधार हो गई, सरस्वतीका कोई अवलम्बन नहीं रहा और पण्डित खण्डित हो गये—उनको सन्मान देनेवाला कोई नहीं रहा।'

'अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिता मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते॥'*

वर्णीजी भी विद्यार्थियों और विद्वानोंके कल्पवृक्ष हैं। यदि वह राजा भोजकी तरह किसी राज्यके स्वामी होते तो विद्वानोंको आजीविका के लिए किसीका मुँह ताकना न पड़ता। जब वे सुनते हैं कि किसी विद्वान् को जीविकाका कष्ट है या किसीने विद्वान्की अवहेलना की है, तो उनका अन्तःकरण आकुल हो उठता है, और वे भरसक उनकी सहायता के लिए प्रयत्न करते हुए रचमात्र भी नहीं सकुचाते। उनका एक सिद्धान्त है कि यदि हमारे चार अक्षरोंसे किसीका हित होता हो तो उसमें अच्छी क्या बात है। उनके चार अक्षरोंसे न जाने कितने पीड़ित, दुखी और निष्कासित छात्रों तथा विद्वानोंका हित हुआ है। ऐसे भी लोग हैं जो उनकी इस उदार वृत्तिकी आलोचना करते हैं और इसलिए कभी-कभी वर्णीजी भी संकोचमें पड़ जाते हैं, किन्तु उनका वह संकोच उनकी उदार मनोवृत्तिके सामने एक क्षणसे अधिक नहीं ठहरता। ठीक ही है, क्या किसीके कहनेसे नदी अपना बहना बन्द कर सकती है, या जलसे भरा मेघ बरसे बिना रह सकता है?

जिस दिन वर्णीजी अस्त हो जायेंगे, विद्वानोंके सिर बिना मुकुटके हो जायेंगे और उनकी जन्मभूमि बुन्देलखण्ड तो सदाके लिए अनाथ हो जायेगा। विरले ही महापुरुष ऐसे होते हैं, जो अपनी जन्मभूमिको इतना प्यार करते हैं। वर्णीजी समस्त भारतकी जैन-समाजके द्वारा आदरणीय होकर भी और भारतके विविध प्रान्तोंमें भ्रमण करते हुए भी अपनी जन्मभूमि और उसके निवासियोंको नहीं भूल सके। बुन्देलखण्डका छोटे-से-छोटा अधिवासी भी उनके लिए प्रिय है। वे उसके बच्चोंकी शिक्षाकी सदा चिन्ता करते रहते हैं।

* अर्थात् आज राजा भोजके जी उठनेसे धारा नगरी सदाके लिए साधार हो गई, सरस्वतीका अवलम्बन स्थायी हो गया और पण्डितवर्ग मण्डित (भूषित) हो गया।

जैन-समाजमे और विशेष करके बुन्देलखण्डकी जनसमाजमे शिक्षा का प्रसार करनेमे वर्णीजीने अथक प्रयत्न किया है, और ७७ वर्षकी अवस्था हो जाने पर भी वे अपने प्रयत्नसे विरत नही हुए है।

उनकी बालको-जैसी सरलता तो सभीके लिए आकर्षक है। उन्हे अभिमान छू तक नही गया है। सदा प्रसन्न मुख, मीठी-मीठी बातें, पर-दुखकातरता और सदा सबकी शुभ कामना, ये वर्णीजीकी स्वाभाविक विशेषताएँ है। जबसे मैंने उन्हें देखा और जाना, तबसे आज तक मुझे उनमे कोई भी परिवर्तन दिखलाई नही दिया। उत्तरोत्तर उनकी ख्याति, प्रतिष्ठा, भक्तोकी सख्या बराबर बढती गई, किन्तु इन सबका प्रभाव उनकी उक्त विशेषताओ पर रचमात्र भी नही पडा।

वे सदा जनताकी भाषामे बोलते है, जनताके हृदयसे सोचते है और जनताके लिए ही सब कुछ करते है। इसीसे जनताके मनोभावोको जितना वे समझते है, जैनसमाजका कोई अन्य नेता नही समझता। वे उसकी कमजोरीको जानते हुए भी उससे घृणा नही करते, किन्तु हार्दिक सहानुभूति रखते है। इसीसे वे जनसाधारणमे इतने अधिक प्रिय है। उनसे मिलनेके बाद प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वर्णीजीकी मुझ पर असीम कृपा है। यही उनकी महत्ताका सबसे बडा चिह्न है। सचमुच में वे छोटे-से भी छोटे और महान्-से भी महान् है।

१० सितम्बर, १९५१

आत्मार्थी

श्री कानजी महाराज

जन्म—	उमराला (काठियावाड)
	वि० सं० १९४६
दीक्षा—	उमराला वि० सं० १९७०
वर्तमान आयु—	६२ वर्ष वि० स० २००८

काठियावाड़ के रत्न

श्री कानजी महाराज प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। उनके परिचयमे आने वालोपर उनकी प्रतिभाका अमिट प्रभाव पड़े विना रहता ही नही। उनकी स्मरणशक्ति वर्षोकी वातको तिथि-वारसहित याद रख सकती है। उनकी कुशाग्र वुद्धि हरेक वस्तुकी तहमे प्रवेश करती है। उनका हृदय वज्रसे भी कठिन और कुसुमसे भी कोमल है। वे एक अध्यात्मरसिक पुरुष हैं। उनकी नस-नसमें अध्यात्म-रसिकता व्याप्त है। कानजी स्वामी काठियावाड़के रत्न हैं।

आत्मार्थी श्री कानजी महाराज

पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

सन् १९४० की घटना है। श्रमणबेलगोलाके महामस्तकाभिषेकसे लौटते हुए अम्बाला-संघ स्पेशल श्री गिरनार क्षेत्रपर पहुँचा। क्षेत्रके मुनीमसे ज्ञात हुआ कि कानजी महाराज यहीं हैं और कल यहाँसे चले जायँगे। हम लोग तुरन्त ही उनसे मिलने गये और हमने गद्दीके तख्तेपर बैठी हुई एक भव्य आकृतिको देखा, जिसने प्रसन्नमुद्रासे हमारा स्वागत किया। यह प्रथम दर्शन था। उसके पश्चात् १९४६ में दूसरा अवसर उपस्थित हुआ।

महाराजकी भक्त-मंडलीने सोनगढ़से दि० जैन विद्वत्परिषद्को आमन्त्रित किया और मुझे उसका प्रमुख बननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीन दिनतक चर्चा-वार्ताका आनन्द रहा और जो कुछ सुना करते थे उसे प्रत्यक्ष देखनेका अवसर मिला।

× × ×

कानजी महाराजका जन्म वि० सं० १९४६ के वसन्त मासमें रविवारके दिन काठियावाड़के उमराला गाँवमें, स्थानकवासी जैन-सम्प्रदायकी अनुयायी वैश्य श्रीमाली जातिमें हुआ। आप बचपनसे ही विरागी थे। छोटी उम्रमें ही माता-पिताके स्वर्गस्थ हो जानेसे कानजी अपने बड़े भाईके साथ आजीविका उपार्जन करनेके लिए पालेजमें चालू दूकानमें शामिल हुए, किन्तु व्यापार करते हुए भी आपका दिल व्यापारी नहीं था। आपके मनका स्वाभाविक झुकाव सत्यकी खोजकी ओर था। उपाश्रयमें किसी मुनिके आनेका समाचार मिलते ही आप उनकी सेवा और धर्म-चर्चाके लिए उनके पास दौड़ जाते थे। इस तरह आपका बहुत-सा समय उपाश्रयमें ही बीतता था। आपके सम्बन्धी आपको 'भगत' कहते थे।

एक दिन आपने अपने बडे भाईसे साफ-साफ कह दिया कि मुझे विवाह नही करना, मेरे भाव दीक्षा लेनेके है। भाईने बहुत समझाया कि तुम लग्न करो चाहे न करो, तुम्हारी इच्छा, किन्तु दीक्षा मत लो। परन्तु बहुत समझानेपर भी उनका विरागी चित्त ससारमे नही लगा। दीक्षा लेनेसे पहले आप कितने ही महीनो तक आत्मार्थी गुरुकी खोजमें काठियावाड, गुजरात और मारवाडके अनेक गाँवोमें घूमे। अन्तमें सवत् १९७० में मार्गशीर्ष सुदी नवमी, रविवारके दिन उमरालामें ही ढोटाद सम्प्रदायके हीराचन्दजी महाराजसे दीक्षा ले ली।

दीक्षा लेनेके पश्चात् आपने श्वेताम्बर आम्नायके शास्त्रोका गहरा अभ्यास किया। आपकी ज्ञानपिपासा और सुशीलताकी ख्याति शीघ्र ही सौराष्ट्रमें फैल गई। जब कोई मुनि कहता—'चाहे जितना उग्र चारित्र पालन करो, किन्तु यदि सर्वज्ञ भगवान्ने अनन्त जन्म देखे होंगे तो उनमेसे एक भी जन्म घटनेका नही।' आप तुरन्त बोल उठते—'जो पुरुषार्थी है, उसके अनन्त जन्म सर्वज्ञ भगवान्ने देखे ही नही।'

सं० १९७८ मे भगवान् कुन्दकुन्द विरचित समयसार ग्रन्थ आपके हाथमें आया। उसे पढते ही आपके आनन्दकी सीमा न रही। आपको ऐसा प्रतीत हुआ कि जिसकी खोजमें थे, वह मिल गया। समयसारका आपपर अद्भुत प्रभाव पडा, और आपकी ज्ञानकला चमक उठी।

स० १९९१ तक कानजीने स्थानकवासी साधुकी दशामे काठियावाडके अनेक गाँवोमे विहार किया और लोगोको जैनधर्मका रहस्य समझानेका यत्न किया। अपने व्याख्यानोमे आप सम्यग्दर्शनपर अधिक ज़ोर देते थे। 'दर्शन-विशुद्धिसे ही आत्म-सिद्धि होती है' यह आपका मुख्य सूत्र रहा है। वे अनेक बार कहते—"शरीरकी चमडी उखाडकर उसपर नमक छिडकनेपर भी क्रोध नही किया, ऐसा चारित्र जीवने अनन्त बार पाला है, किन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नही किया। लाखो जीवोकी हिंसासे भी मिथ्यात्वका पाप अधिक है।.. सम्यक्त्व सुलभ नही है। लाखो करोडोमेसे किसी एक विरलेको ही वह प्राप्त होता है। आज तो

सब अपने-अपने घरका सम्यक्त्व मान बैठे हैं।"

इस तरह अनेक प्रकारसे आप सम्यक्त्वका माहात्म्य लोगोंके चित्त-पर बैठानेका यत्न करते। प्राय. देखा जाता है कि साधुओंके व्याख्यानमें वृद्धजन ही आते हैं, परन्तु आपके व्याख्यानमें शिक्षितजन—वकील, डाक्टर वगैरह भी आते थे। जिस गाँवमें आप पधारते, उस ग्राममें घर-घर धार्मिक वायुमण्डल छा जाता। तथा जैनधर्मके प्रति अनन्य श्रद्धा, दृढता और अनुभवके बलपर निकलनेवाले आपके वचन नास्तिकोंको भी विचारमें डाल देते और कितनोंको ही आस्तिक बना देते।

पहले तो आप स्थानकवासी सम्प्रदायमें होनेसे व्याख्यानोंमें मुख्य-तया श्वेताम्बर शास्त्र पढते थे, किन्तु अन्तिम वर्षोंमें समयसार आदि ग्रन्थोंको भी सभामें पढा करते थे। यह क्रम स० १९९१ तक चलता रहा, किन्तु अन्तरंगमें वास्तविक निर्ग्रन्थ मार्ग ही सत्य मालूम होनेसे स० १९९१ के चैत्र सुदी १३ मंगलवारको भगवान् महावीरके जन्म-दिवसके अवसर पर आपने धर्म-परिवर्तन कर लिया और सत्यके लिए काठियावाड़के सोनगढ नामक छोटेसे गाँवमें जाकर बैठ गये।

जो स्थानकवासी सम्प्रदाय कानजी मुनिके नामसे गौरवान्वित होता था, उसमें इस परिवर्तनसे हलचल होना स्वाभाविक ही था, किन्तु वह हलचल क्रमसे शान्त हो गई। जिन लोगोंका उनमें विश्वास था, वे ऐसा विचार कर कि 'महाराजने जो किया वह समझकर ही किया होगा' तटस्थ बन गये और मुमुक्षु तथा विचारक वर्ग तो पहलेसे भी अधिक उनका भक्त बन गया।

परिवर्तनके बाद आपका मुख्य निवास सोनगढमें ही है। आपकी उपस्थितिसे सोनगढ़ एक तीर्थधाम-सा बन गया है। विभिन्न स्थानोंसे अनेक भाई-बहन आपके उपदेशका लाभ लेने सोनगढ आते रहते हैं। उनके निवास तथा भोजनके लिए वहाँ एक जैन अतिथिगृह है। उसमें सब भाई समयसे एक साथ भोजन करते हैं। अनेक मुमुक्षु भाई-बहनोंने तो वहाँ अपना स्थायी निवास-स्थान बना लिया है।

सोनगढका जिन-मन्दिर तथा सीमन्धर स्वामीके समवसरणकी रचना दर्शनीय है। कुन्दकुन्द स्वामीके विषयमे ऐसा उल्लेख मिलता है कि उन्होने विदेहक्षेत्रमे जाकर सीमन्धर स्वामीके मुखसे दिव्यध्वनिका श्रवण किया था। दर्शनसारमे लिखा है—

"जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥'

अर्थात्—'यदि सीमन्धर स्वामीसे प्राप्त दिव्य ज्ञानसे श्री पद्मनन्दि स्वामी, (कुन्दकुन्द) ने बोध न पाया होता तो मुनिजन सच्चे मार्गको कैसे जानते?'

कानजी स्वामीकी उक्त उल्लेखपर दृढ आस्था है। अत उनकी भावनाके अनुसार सोनगढमें सीमन्धर स्वामीके समवसरणकी रचना रचकर उसमे कुन्दकुन्द स्वामीको भगवान्का उपदेश श्रवण करते हुए दिखलाया है। यह रचना दर्शनीय है।

सोनगढका स्वाध्याय-मन्दिर भी दर्शनीय है। यह एक विशाल भवन है, जिसमे कई हजार भाई-बहन एक साथ बैठकर महाराजका उपदेश श्रवण कर सकते है। धर्मोपदेशका समय निश्चित है, सुबह ८ से ९ तक और सन्ध्याको ३ से ४ तक। सब श्रोता ठीक समय पर आकर बैठ जाते है और ठीक समयसे उपदेश प्रारम्भ हो जाता है और ठीक समयपर बन्द होता है। समय-पालनकी विशेषता पर बराबर ध्यान दिया जाता है। सन्ध्याको उपदेशके पश्चात् सब भाई-बहन जिन-मन्दिरमे जाते है और वहाँ आधा घटा सामूहिक भक्ति की जाती है।

कानजी महाराजकी समयसार और कुन्दकुन्दके प्रति अतिशय भक्ति है। वे समयसारको उत्तमोत्तम ग्रन्थ गिनते है। उनका कहना है कि 'समयसारकी प्रत्येक गाथा मोक्ष देनेवाली है। भगवान् कुन्दकुन्दका हमारे ऊपर बहुत भारी उपकार है। हम उनके दासानुदास है। भगवान् कुन्दकुन्द महाविदेहमें विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धर स्वामीके पास गये थे। कल्पना करना मत, इनकार करना मत, यह बात इसी प्रकार है,

मानो तो भी इसी प्रकार है, न मानो तो भी इसी प्रकार है।'

समयसारकी जो स्तुति वहाँ पढ़ी जाती है, वह भक्तिरससे ओत-प्रोत है। यद्यपि वह गुजरातीमें है, किन्तु गुजराती न जाननेवाले पाठक भी उसका आशय सरलतासे समझ सकते हैं—स्तुति इस प्रकार है—

सीमन्धर मुख[1]थी फूलडां झरे,
एनां[2] कुन्दकुन्द गूंथी माल रे,
जिनजी नी वाणी भली रे।
वाणी भली मन लागे रली,
जेमां समयसार सिरताज रे,
जिनजी नी वाणी भली रे'''सीमन्धर० ॥१॥
गूंथ्या पाहुड ने गूंथ्यूं पंचास्ति,
गूंथ्युं प्रवचनसार रे,
जिनजी नी वाणी भली रे।
गूंथ्यूं नियमसार, गूंथ्यूं रयणसार,
गूंथ्यूं समयनो सार रे,
जिनजी नी वाणी भली रे'''सीमन्धर० ॥२॥
स्याद्वाद केरी[3] सुवासे भरे लो,
जिनजीनो ॐकार नाद रे,
जिनजी नी वाणी भली रे।
वंदु जिनेश्वर वंदु हुं कुन्दकुन्द,
वंदु ए ॐकार नाद रे,
जिनजी नी वाणी भली रे'''सीमन्धर० ॥३॥
हैडे[4] हजो मारा भावे हजो,
मारा ध्याने हजो जिनवाण रे,
जिनजी नी वाणी भली रे।

---

१ मुखसे। २ इसकी। ३ की। ४ जिनवाणी हमारे हृदयमें होवे, जिनवाणी हमारे भावोंमें होवे, जिनवाणी हमारे ध्यानमें होवे।

जिनेश्वर देवनी वाणीसना वायरा[1],
वाजे मने दिन रात रे,
जिनजी नी वाणी भली रे'''सीमन्धर० ॥४॥

इसमें सन्देह नही कि कानजीका व्यक्तित्व वडा प्रभावक है और वक्तृत्वशैली अनुपम है। उनके प्रभावसे सोनगढके जैनेतर अधिवासी भी अध्यात्म-चर्चाके प्रेमी वन गये हैं। अपने सोनगढके प्रवास-कालमें हमे इसका अनुभव हुआ। एक दिन एक व्यक्ति विद्वानोके वासस्थान पर आकर अध्यात्मकी चर्चा करने लगा। पूछनेपर उसने अपना परिचय देते हुए कहा कि मै मुसलमान हूँ, पुलिसमे कान्सटेवुल हूँ और प्रतिदिन महाराजका उपदेश सुनने जाता हूँ।

दूसरे दिन एक विद्वान्को ज्वर आ गया। उन्हें देखनेके लिए डाक्टर आया। एक घटे तक खूव अध्यात्म चर्चा रही।

किंवदन्ती है कि मण्डन मिश्र एक वहुत वडे विद्वान् थे। जब शकराचार्य शास्त्रार्थके लिए उनके ग्राममें पहुँचे तो उन्होंने ग्रामके वाहर कुआँपर पानी भरनेवाली एक स्त्रीसे मण्डनमिश्रका घर मालूम करना चाहा। उस पानी भरनेवालीने उत्तर दिया—

"स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाण कीरांगना यत्र गिरो गिरन्ति।
द्वारेऽपि नीडान्तःसन्निरुद्धा अवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥"

'जिसके द्वारपर पीजरोमें वन्द मैनाएँ 'प्रमाण स्वतः होता है अथवा परत होता है' इस प्रकारकी चर्चा करती हो, उसे ही मण्डनमिश्र का घर समझना।' सोनगढके विषयमें भी ऐसा ही समझना चाहिए। जहाँके वायुमण्डलमें अध्यात्म प्रवाहित हो वही कानजीका निवास स्थान सोनगढ है।

—काशी १ अक्टूबर, १९५१

---

१ वायु।

जन्म—	वृन्दावन आषाढ शुक्ल ३ वि० स० १९४६
विवाह—	११ वर्षकी अवस्था मे
वैधव्य—	१२ वर्ष की अबोधावस्था में
वर्तमान आयु—	६२ वर्ष वि० स० २००८

बापूका आशीर्वाद

पण्डिता चन्दावाई द्वारा स्थापित "वनिता-विश्राम" देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ, और मकानकी शान्ति देखकर आनन्द हुआ।

मोहनदास कर्मचन्द गान्धी

शत-शत प्रणाम

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

पति मर गया, पत्नीकी उम्र १६ वर्ष है। माँ-बाप बिलख रहे हैं, भाई रो रहे हैं, बहनें बेहाल हैं, शहरभरमें हाहाकार है, पर जिसका सब कुछ लुट गया, वह स्नान करके शृंगार कर रही है, आँखोंमें अंजन, माँगमें सिन्दूर और गुलाबी चुनरिया, चेहरेपर रूप बरस पड़ा है, अंग-अंग में स्फुरणा है और जिह्वामें मिश्री, जिनसे कभी सीधे मुँह नहीं बोली, आज उनसे भी प्यार।

शहर भरके लोग एकत्र, युवककी अर्थी उठी, अर्थीके आगे, नारियल उछालती, पर्देके उस बीहड अंधकारमें भी खुले मुँह गीत गाती, ढोलके मद भरे घोष पर थिरकती, उसीकी ताल पर अपनी नई चूडियाँ खनखनाती, वह १६ वर्षकी सुकुमारी नारी श्मशानकी ओर जाती, भारत के चिर अतीतमें हमें दिखाई देती है।

उसका पति मर गया, पर वह विधवा नहीं, यह हमारी संस्कृतिका महा वरदान है। पतिके साथ रही है, पतिके साथ रहेगी—चिताके ज्वालामय वाहन पर आरूढ़ हो, किसी अक्षयलोककी ओर जैसे देहधरे ही वह उडी जा रही है, जहाँ रूप है, कुरूप नहीं, मंगल है अमंगल नहीं, मिलन है, वियोग नहीं। यह भारतके स्वर्णयुगकी महामहिमामयी सती है, उसे शत-शत प्रणाम!

* * *

पति मर गया है, पत्नीकी उम्र १६ वर्ष है, उसके जीवनमें अब आह्लाद नहीं, आशा नहीं, दुनियाके लिए वह एक अशकुन है, सासके निकट डायन, माँके लिए बदनसीब, वह मानव है, भगवान्‌के निवासका पवित्र मन्दिर, पर मानवका कोई अधिकार उसे प्राप्त नहीं। समाज

और धर्मशास्त्र दोनोंने उसके पथमें ऊँचे-ऊँचे 'बोर्ड' खडे किये है, जिनपर लिखा है, सयम, ब्रह्मचर्य, त्याग, सतीत्व और वन्दनीय, पर व्यवहारमे प्राय जेठ, देवर, श्वशुर और जाने किस-किसकी पशुताका शिकार। रेलवे डिपार्टमेण्टके 'सफरी' विभागके कर्मचारियोकी तरह जब आवश्यकता हो, पिताके घर और जब जरूरत हो श्वशुरके द्वार जा 'कर्तव्य-पालन' के लिए बाध्य, ऐसा कर्तव्य पालन, जिसमे रस नही, अधिकार नही, ममता नही, कैदीकी मशक्कतकी तरह अनिवार्य, पर महत्त्वहीन और मानहीन ! यह हमारे राष्ट्रके मध्ययुगकी विधवा है, समाजका अग होकर भी, सामाजिक जीवनके स्पन्दनसे शून्य। साँस चलता है, केवल इसीलिए जीवित; अन्यथा जीवनके सब उपकरणोसे दूर, जिसने सब कुछ देकर भी कुछ नही पाया, बलिदानके बकरेकी तरह वन्दनीय। जिसने ठोकरे खाकर भी सेवा की और रोम-रोममे अपमानकी सुइयोसे विधकर भी विद्रोह नही किया। हमारे सास्कृतिक पतनकी प्रतिबिम्ब और सामाजिक ह्रासकी प्रतीक इस वैधव्यमूर्तिको भी प्रणाम !

* * *

पति मर गया है, पत्नी १६ वर्षकी है। हँसनेको उत्सुक-सी कली पर विपदाका जब पहाड टूटा, माँके विलापका धुवाँ जब आकाशमें भर चला, परिवार और पास-पडौस जब कलेजेकी कसकमे कराह उठे, तब पिताने धीमे, पर दृढ स्वरमे कहा---रोओ मत, उसकी चूडियाँ मत उतारो, मै अपनी बेटीका पुनर्विवाह करूँगा तो जैसे क्षण भरको बहती नदी ठहर गई। साथियोने हिम्मत तोडी, पचोने पचायतके प्रपच रचे, सुसरालवालोने कानूनी शिकजोकी खूँटियाँ ऐंठकर देखी, पर सुधारक पिता दृढ रहा। उसने युगकी पुकार सुनी और एक योग्य वरके साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया, धूमधामसे, उत्साहसे, गम्भीरतासे। कन्याका मन आरम्भमें हिरहिराया, फिर अनुकूल हुआ और फिर उसका मन अपने नये घरमे रम गया। पतिके प्रति अनुरक्त, परिवारके प्रति सहृदय और अपनी सन्तानमें लीन वह जीवनकी नई नाव खे चली।

यह हमारे युगकी नई करवट, परम्पराकी नई परिणति, नारीकी असहायताका नया अवलम्ब, समाजके निर्माणकी नव सूचनाका एक प्रतीक है, जिसे आरम्भमें वर्षों पतिका प्यार तो मिला, पर समाजका मान नहीं, जिसे परिवार मिला, जिसने परिवारका निर्माण किया, पर जिसे बरसों पारिवारिकता न मिली, जिसे बरसों नई आबादीके मधुर कोलाहलमें भी निगत वीरानेकी शून्यताका भार ढोना पड़ा, पर जो धीरे-धीरे युगका अवलम्ब लिये स्थिर होती गई और जो आज भी कुलीनताके निकट व्यगकी तो नहीं, हाँ इंगितकी पात्र है। नवचेतनाके इस साधना-स्रोतको भी प्रणाम !

* * *

पति मर गया है, पत्नी १६ वर्षकी है। आशाओंके सब प्रदीप एक ही झोंकेमें बुझ गये। कहीं कोई नहीं, कहीं कुछ नहीं, बस शून्य—सब शून्य। स्थिरता जीवनमें सम्भव नहीं, पैर हिलनेकी भी शक्तिसे हीन। सहसा हृदयमें एक आलोक, आलोकमें जीवनकी स्फुरणा और स्फुरणामें चिन्तन !

पति ! नारीके जीवनमें पतिका क्या स्थान है ? पति ? क्या विवाह द्वारा प्राप्त एक साथी ? और विवाह ? आजकी भाषामें एक ऐग्रीमेण्ट ? तो पति मर गया और वह ऐग्रीमेण्ट भग ! अब नारी स्वतन्त्र, चाहे जिधर जाय, चाहे जो करे ? है न यही ? हाँ; तो फिर हमारी संस्कृतिमें, इन शास्त्रोंमें, विवाहके ये गीत क्यों ? इन हाँके साथ जैसे भीतरका, आत्माका सब रस सूख चला।

फिर चिन्तन, गम्भीर चिन्तन, अन्तरमें भाव-धाराकी सृष्टि। जीवनमें साथी तो अनेक हैं, पतिका अर्थ है प्रतीक—व्रतका प्रतीक, लक्ष्य का प्रतीक। पतिव्रतका अर्थ है पतिका व्रत ! पतिकी पूजा ? दुनिया कहती है हाँ, धर्म कहता है नहीं, पतिका व्रत, पतिकी पूजा ? यह अर्थका अनर्थ है। मानव, मानवकी पूजा करे, मानव ही मानवताका व्रत

हो यह ईश्वरके प्रति द्रोह है। फिर! पतिव्रत—पतिके द्वारा व्रत, पतिके द्वारा पूजा। पूजा लक्ष्यकी, व्रत साध्यकी प्राप्तिका।

तब यह लक्ष्य क्या है? साध्य क्या है। व्यक्तिकी समष्टिके प्रति एकता, अणुकी विराटमें लीनता, भेद-उपभेदोंकी दीवारें लाँघकर, अज्ञान गिरिके उस पार हँसते-खेलते प्रभु-परमात्मामें जीवकी परिणति।

ओह, तब पति है साधन, पति है पथ, पति है अवलम्ब, न साध्य ही न लक्ष्य ही! पर साधन नहीं, तो साध्य कहाँ, पथके बिना प्रिय-प्राप्ति कैसी और वह हो गया भग?

भगवान्‌की कृपासे फिर ज्ञानका आलोक। भग कैसा! लहर जब सरितामें लीन होती है, तब क्या वह नाश है? बीज जब मिट्टीमें मिल वृक्षमें बदलता है, तब क्या वह नाश है? ऊँहूँ यह नाश नहीं है, यह परिणति है। पति है लहर, सरिता है समाज, पति है बीज, वृक्ष है समाज। पति नहीं है! इस नहीका अर्थ है प्रतीककी परिणति।

नारी लक्ष्यकी ओर गतिशील, कल भी थी, आज भी है, यही उसका व्रत है। कल इस व्रतका प्रतीक था पति। आज है समाज। गतिके लिए तल्लीनता अनिवार्य है। कल तल्लीनताका आधार था पति, आज है समाज। कल नारी पतिके प्रेममें लीन थी, आज समाजके प्रेममें लीन है। यह लीनता स्वयं अपनेमें कोई पूर्ण तत्त्व नहीं, पूर्णताका प्रशस्त पथ है। नारीका लक्ष्य अविचल है, जो कल था, वही आज है, पर पथ परिवर्तित हो गया, प्रतीक बदला, साधन बदले, इँगलैंडका यात्री अदनपर अपना जलपोत त्याग हवाई जहाज पर उड़ चला। उसे इँगलैंड ही जाना था, और इँगलैंड ही जाना है—यात्राके साधनोंका परिवर्तन यात्राके लक्ष्य का परिवर्तन नहीं।

ज्ञानके आलोककी इस किरणमालामें स्नानकर नारी जैसे जाग उठी, जी उठी। निराशा आशाके रूपमें बदल गई, वेदना प्रेममें अन्तर्हित, स्तब्धता स्फुरणामें, सामने स्पष्ट लक्ष्य, पैरोंमें गति, मनमें उमग, जीवनमें उत्साह। मस्तिष्क सद्भावनाओंसे पूर्ण, हृदय प्रेमसे। कहीं किसीका

कष्ट देना और पैर चले, कहीं किसीका कष्ट देखा और भुजाएँ उठीं, कहीं किसीका कष्ट देखा और मस्तिष्क चिन्तित—विश्वभरके जीवनमें ओत-प्रोत, पत्नी अब वह किसीकी नहीं, माना सारे विश्वकी, सबके लिए विश्वसनीय, सबके लिए वन्दनीय।

यह नारीके नारीत्वका चरम विकास है, उसके मनीषाकी परम गति है, उसकी गतिकी अन्तिम सीमा है, जहाँ वह आना चाहती थी, यहीं उसके जीवनका गंगा-सागर है, जहाँ वह भगवान्-सागरमें लीन हो, परम मुक्तिका लाभ लेती है। निर्माणमयी, निर्वाणमयी नारीकी इस नित नूतन मूर्तिको लाख-लाख प्रणाम।

* * *

भारतीय संस्कृतिके सबल साधक गान्धीजीने नारीकी इसी शक्ति को, वैधव्यके इसी दिव्य रूपको 'हिन्दूधर्म' का शृंगार कहा है। शृंगार-की इसी दीप्तिसे प्रोज्ज्वल आज एक नारी हमारे मध्यमें है, ब्रह्म-चारिणी चन्दाबाई!

* * *

चन्दाबाई—एक वैष्णव परिवारमें जन्मी, राधाकृष्णकी रसमयी भक्तिधाराके वातावरणमें पली। माकी लोरियोंमें उन्हें श्रद्धा-का उपहार मिला, पिताके प्यारमें उन्होंने कर्मठताका दान पाया और ११ वर्षकी उम्रमें एक सम्पन्न जैन-परिवारमें उनका विवाह हुआ।

विवाह हुआ, उनके निकट इसका अर्थ है, विवाह-संस्कार हुआ और १२ वर्षकी उम्रमें उनका सब कुछ छिन गया, वे ठीक-ठीक जान भी न पाईं और वैधव्यकी ज्वालामें उनका सर्वस्व भस्म हो गया।

१२ वर्षकी एक सुकुमार बालिका, जो दुनियाको देखती है, पर समझ नहीं पाती; जो समझती है, अपने व्याकरणसे, अपने कोशसे, अपने ही लक्षणसे। इतना विशाल विश्व और अकेले यात्रा यहाँ भाग्यका अस्तित्व है, योग्य अभिभावक मिले, पथ बना। वैष्णवकी श्रद्धाका सम्बल

लिए वे चली, जैनत्वकी साधनाने उन्हें प्रगति दी। श्रद्धा और साधना दोनो दूर तक साथ-साथ चली। श्रद्धा समर्पणमयी है, साधना ग्रहणशील, श्रद्धा साधनामें लीन हो गई।

श्रद्धामयी साधना मूक भी है, मुखरित भी। मुखरित साधना, जिसमें अन्तर और बाह्य मिलकर चलते है—बुद्ध, महावीर और गान्धीकी साधना, जिसमे आत्मचिन्तन भी है, जगकल्याण भी। यही पथ चन्दाबाईजीने चुना। विगत वर्षोंमें उन्होने जो आत्मसाधनाकी अन्तरमे तप तपा, वह उनकी आकृतिमें, जीवनके अणु-अणुमें व्याप्त है। प्रत्यक्ष, जिसके अनुसन्धानमे श्रम अभीष्ट नही, और इन्ही वर्षोमें उन्होने लोक-कल्याणकी जो साधना की, उसका मूर्तरूप आराका 'जैनबाला-विश्राम' है देशकी एक प्रमुख सेवा-सस्था। आत्मसाधनामे सन्यासी, लोकव्यवहारमें सासारिक, विश्व और विश्वात्माका समन्वय ही इस महिमामयी नारीकी जीवन-साधना है। जीवनमें धार्मिक, व्यवहारमें देशसेवक, सिद्धान्तोमें अतीतकी मूलमे, प्रगतिमे नवयुगकी छायामे, जिसकी एक मुट्ठीमे भूत, दूसरीमें भविष्य और वर्तमान जिसके जीवनोच्छ्वासमे व्याप्त, यही पण्डिता चन्दाबाई है। युगका सन्देश वहन करती साधनामयी इस नारीको भी शत-शत प्रणाम!

—अनेकान्त, नवम्बर १९४३

प्रथम दर्शन

श्री नेमिचन्द्र ज्योतिषाचार्य्य

पहली मई सन् १९३९ को पत्र मिला—"आप इण्टरव्यूके लिए चले आइये, मार्गव्यय मिल जायगा।" पत्रने मेरे मनमें गुदगुदी पैदा करदी, मेरे हृदयकुञ्जमें मदिर भाव विहगोंका कूजन होने लगा। वीणाके तारोंमें सोया हुआ संगीत मुखरित हो उठा। मनने कहा—सफलता निकट है, आजीविका मिल जायेगी, पर हृदयने वेदनाके एक सजल छोरको पकड़कर झकझोरते हुए कहा—यह अधर छलकती मुस्कान प्रकृतिका नवल उल्लासमात्र है। आरामें धर्मशास्त्रज्ञा पण्डिता चन्दाबाईजीके समक्ष जाना है, बड़े-बड़े पण्डित उनके पाण्डित्यके समक्ष मूक हो जाते हैं, तुम नये रँगरूट, अनुभवशून्य, मात्र किताबी कीड़े टिक सकोगे ? हृदयके इस कथनकी कल्पनाने अवहेलना की। वह सुख-दुख, हास-विषाद, संकल्प-विकल्पके साथ आँख-मिचौनी खेलने लगी। कर्मयोगका विश्वासी इस अनन्त विश्वमें साधनाशील होकर ही जीवनके सत्यको प्राप्त करता है। सहसा अन्धकारमय क्षितिज पर एक निर्मल ज्योतिकी प्रभा अवतरित हुई और अन्तस्से ध्वनि निकली कि चलकर हितैषी गुरुवर्य्य पण्डित कैलाशचन्द्रजीसे सलाह क्यों न ली जाय ?

वेदनासे भाराच्छन्न मन लिये गुरुवर्य्यके समक्ष पहुँचा और काँपते हुए पत्र उनके हाथमें दे दिया। एक ही दृष्टिमें पत्रके अक्षरोंको आत्मसात् करते हुए वह बोले—"तुम काम करना चाहते हो, आरा अच्छी जगह है, चले जाओ। ब्र० प० चन्दाबाईजीके सम्पर्कसे तुम्हारा विकास होगा, सोना बन जाओगे।"

मैंने धीरेसे कहा—"पण्डितजी ! डर लगता है। इण्टरव्यूमें क्या कहूँगा।"

गुरुदेवने प्रेमभरे शब्दोमे कहा—"डरनेकी बात नही, सँभलकर उत्तर देना।"

वार्षिक परीक्षा समाप्त होनेपर ५ मईके प्रात.काल कल्पनाके कमनीय पखो पर उडता हुआ, उल्लासकी वीणा पर भव्य भावनाओकी कोमल अँगुलियाँ फेरता, अनेक अरमानोको हृदयमे समेटे, खिन्न मन मैना सुन्दर भवन (नयी धर्मशाला) आरामे आ पहुँचा। दरबानने एक कोठरी ठहरनेको दे दी, सामान एक किनारे रख नित्यकर्मसे निवृत्त हुआ; और स्नान, देवदर्शनके पश्चात् कर्मचारियोंसे मालूम किया कि प० चन्दाबाईजीके दर्शन कहाँ होंगे ?

धर्मशालाके मैनेजर काशीनाथजीने कहा—"कलसे वे कोठी (श्री बाबू निर्मलकुमारजीके भवन) मे आई हुई है। आप अभी ७ बजे उनसे कोठीमें ही मिल आइये, दो बजे वह आश्रम चली जायेंगी।" मैंने नम्रता-पूर्वक कहा—"कृपया मुझे कोठीका रास्ता बतला दें, यदि अपने यहाँके आदमीको मेरे साथ कर दे तो मै अपनेको धन्य समझूँ।"

उन्होने मेरे साथ सहानुभूति प्रकट की और धर्मशालाके सेवक चतुर्गुणको मेरे साथ कोठी तक कर दिया। वहाँ जाकर मैंने दरबानसे पूछा—"श्री प० चन्दाबाईजीसे मुलाकात कहाँ होगी ?" उसने कहा कि "आप छोटी बहूजीसे मिलना चाहते है ? इस समय तो वह मन्दिरमे सामायिक कर रही है।" मैंने कहा—"नही जी, मुझे प० चन्दाबाईजीसे मिलना है, जो बालाविश्रामकी सचालिका है।" कठिनाई यह थी कि दरबान भोजपुरीमें बोलता था और मै बोलता था हिन्दीमें। दोनो ही परस्पर एक दूसरेकी बातोको ठीक तरहसे समझनेमें असमर्थ थे। बडी देरतक वह छोटी बहूजी, छोटी बहूजी कहता रहा और मै प० चन्दाबाईजीको पूछता रहा। इसी बीच ऊपरसे कोई रसोइया आया और वह हम दोनो-की बातोको सुनकर बोला—"हाँ, हाँ, वही धनुपुरा वाली बहूजी ! अभी-अभी सामायिक करके आई है। आप क्या चाहते है ? मै ऊपर पूछकर आता हूँ, अपना नाम बतला दीजिये।"

मैंने एक चिटपर अपना नाम लिखकर और उनका उत्तरव्यके लिए प्राप्त पत्र उन रनोड्येको दे दिया। थोड़ी देरमे उस व्यक्तिने आकर कहा—"आपको ऊपर बहूजी बुला रही है।"

मैंने उस आदमीसे कहा—"भई! मै नया आदमी हूँ, यहाँके नियमो-से बिल्कुल अपरिचित हूँ, ऊपर तक मेरे साथ चलनेका कष्ट करे।" मन कहता है उस समय मेरे मनमें उसने कहीं अधिक घबराहट थी। जैसी विषय तैयार न होनेपर कभी-कभी परीक्षाभवनमें घबराहट हो जाती थी। कलेजा धक्-धक् कर रहा था, नाना प्रकारके संकल्प-विकल्प उत्पन्न हो रहे थे। मै अपने भाग्यका निपटारा कराने जा रहा था।

ऊपर पहुँचकर कमरेके दरवाजेसे मैंने झांका उन्हे हुए, सकुचाते हुए, भय खाते हुए। मन कह रहा था कि कहीं मुझसे कुछ अशिष्टता न हो जाय और बना-बनाया सारा खेल न बिगड़ जाय। मै प्रतीक्षा कर रहा था कि एक मधुर आवाज आई, आप भीतर चले आइये। फिर क्या था अमल धवल खद्दरकी साड़ी पहने दिव्य तेजस्विनी, सादगीसे ओत-प्रोत, मधुरभाषिणी, तपस्विनी, स्नेहशीला मांके दर्शन हुए। उस समय हृदयमें नाना प्रकारकी लहरें उठ रही थी। मैंने श्रद्धा और भक्तिसे प्रणाम करते हुए मनमे कहा—"यही पंडिता चंदाबाईजी है, तब तो डरने-की कोई बात नही। मै जिनसे डर रहा था, उनमे अपूर्व स्नेह और ममता है, वाणीमे तो मिश्री घोल दी गई है।" न मालूम क्यो मेरे हृदयने बरबस ही उनके गुणोकी श्रेष्ठता स्वीकार कर ली और उनकी चरण-रज सिर-पर धारण करनेको लालायित हो उठा।

स्नेहामृत उँडेलकर कुर्सी पर बैठालते हुए उन्होंने पूछा—"रास्तेमें कष्ट तो नही हुआ? अपना सामान आपने कहाँ रक्खा है? आप रहने-वाले कहाँके है?" मैंने सक्षेपमे उपर्युक्त प्रश्नोका उत्तर दिया। पश्चात् उन्होने पुन कहा—"आपने कहाँ तक अध्ययन किया है? धर्मशास्त्रमे कौन-कौन ग्रथ पढे है? सस्कृत-साहित्य और व्याकरणका अध्ययन कहाँ तक किया है? न्यायतीर्थकी परीक्षा किस वर्ष दी?" मैंने पूज्य पंडित

कैलाशचन्द्रजी द्वारा प्रदत्त परिचयपत्रको देते हुए उपर्युक्त प्रश्नोका सक्षेपमे जवाब दिया। अब मुझमें साहस आने लगा था और भय उत्तरोत्तर घटता जा रहा था।

अनन्तर माँश्रीने हँसते हुए प्रथम गुच्छक, जिसका वह स्वाध्याय कर रही थी उठा लिया और मुझसे देवागम-स्तोत्रकी बाहरवी कारिका– "अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनाम्" का अर्थ पूछा। मै अष्टसहस्रीकी परीक्षा देकर आया था। मुझे अपने तद्विषयक पाडित्यका पूरा भरोसा था; अत प्रसन्न होकर कारिकाका अर्थ 'शती' और 'सहस्री' टीकाओके आधारपर उद्धरणसहित बताया। माँश्रीने हँसते हुए बीचमे रोककर कहा कि कारिकाके उत्तरार्द्ध 'बोधवाक्य' का अर्थ फिरसे कहिये। मैंने रटी हुई पक्तिके आधार पर कहा—"बोधस्य स्वार्थसाधनद्रूपस्य वाक्यस्य च परार्थसाधनद्रूपस्यात्मनो संभवात्तन्न प्रमाणम्" अर्थात् स्वार्थानुमान और परार्थानुमानकी प्रमाणता सिद्ध न हो सकेगी।

माँश्रीने बीचमें रोकते हुए कहा—"बोध" शब्दका अर्थ अनुमान और "वाक्य" शब्दका अर्थ आगम लिया जाय तो क्या हानि है? वसुनदी वृत्तिके आधार पर उन्होने अपने अर्थकी पुष्टिके लिए प्रमाण भी उपस्थित किये। मै उनकी तर्कणाशक्तिको देख आश्चर्यमें डूब गया। पश्चात् 'आत्मानुशासन' और 'नाटकसमयसारकलश' के कई श्लोकोका अर्थ पूछा। मै अर्थ कहता जाता और माँश्री बीच-बीचमे शकाएँ करती जाती थी। बृहत्स्वयभूस्तोत्रमे मुनि सुव्रतनाथकी स्तुतिमें आये–"शशिरुचिशुचिशुक्ललोहितं" श्लोकका अर्थ गलत कर रहा था तो माँश्रीने मीठे शब्दोमें मेरी गलती बतलाई और उस श्लोकके दो-तीन अर्थ भी प्रकारान्तरसे किये।

गोम्मटसार जीवकाण्डको लेकर उन्होने "अवरुवरि इगिपदेसे गुदे असंखेज्जभाग वड्ढीए" आदि अवगाहनाके वृद्धिक्रमवाली गाथाओकी व्याख्या करनेका मुझे आदेश दिया। गणित विषयमे विशेष रुचि होनेके कारण मैंने गोम्मटसारमे आई हुई सदृष्टियोको अपने कल्पित उदाहरणो द्वारा हृदयगम कर लिया था, पर फिर भी न मालूम क्यो मैं इस समय अधिक

नरवस होता जा रहा था। धीरे-धीरे मेरी आवाज भी भर्राती जा रही थी। गलेमें भी खुनखुनाहट होने लगी थी। यद्यपि मैं सद्दिग्धमिश्र अर्थ कह रहा था, पर मुझे ऐसा लग रहा था कि मुझसे विषय स्पष्ट नहीं हो रहा है। चार-पांच गाथाओंकी व्याख्याके पश्चात्—सोचीने प्रश्न किया कि—"अवगाहनामें चार ही वृद्धियां क्यों होती हैं, अनन्तभाग और अनन्त-गुण वृद्धि क्यों नहीं होती ?" मैं इस शंकाका समाधान नहीं कर सका और घबड़ाकर बगलें झांकने लगा। उन्होंने मधुर स्वरमें कहा—"असंख्येयाः प्रदेशाः धर्माधर्मैकजीवानाम्" सूत्र याद है। आत्मा जब असंख्यात प्रदेशी है तो उसमें अनन्तभाग या अनन्तगुणवृद्धि कैसे होगी ? मैं चुप रह गया और अपनी पराजय स्वीकार कर ली।

इण्टरव्यू समाप्त हुआ। वह बोली—"पण्डितजी ! हमारा विचार बालकोंकी नैतिक शिक्षाके लिए एक रात्रिपाठशाला खोलनेका है। धन-के बिना मनुष्य उठ सकता है, विद्याके बिना भी बड़ा बन सकता है, पर चरित्रबलके बिना सर्वथा हीन और पशु है। आचरणहीन ज्ञान पाखण्ड है। नैतिक व्यक्ति ही अपने प्रति सच्चा ईमानदार हो सकता है। आज-की स्कूल और कॉलेजकी शिक्षामें नैतिकताका अभाव है। बच्चे अपरि-पक्व घड़ेके समान हैं, इनके ऊपर आरम्भमें ही अच्छे संस्कारोंका पड़ना आवश्यक है। अतएव हाईस्कूलोंमें पढ़नेवाले अपने बच्चोंको धार्मिक शिक्षा देनेके लिए एक रात्रिपाठशाला खोलनी है। आपको उस पाठ-शालाका शिक्षक बनना होगा। आप सुविधानुसार प्रात. और सायंकाल बच्चोंको धार्मिक शिक्षा दें, शहरमें यों तो ५०-६० बच्चे पढ़नेके लिए मिल जायेंगे, पर जब तक २०-२२ लड़के भी आते रहेंगे, पाठशाला चलती जायगी। इस पाठशालाका कुल व्यय हम अपने पाससे देंगी।

आप इस बातका खयाल रखें कि श्लोक या पद्य रटानेकी अपेक्षा उन्हें जीवन क्या है और उसे कैसे व्यतीत करना चाहिए—सिखलावें। शिक्षाको कल्याणकारी बनानेके लिए शिक्षकको पूर्ण दायित्वका निर्वाह करना होता है। उसे अहंकार छोड़कर एक ही मार्गके यात्रीके रूपमें

खातिर मैं अपने धर्मको तो नहीं बेचूंगा। जब मुझमें न्यायीकी स्थापना दोनों पक्षोंने कर दी तो फिर मैं अन्यायीका रूप क्यों धारण करता? मेरा धर्म मुझे न छोड़े, चाहे सारा संसार मुझे छोड़ दे, तो भी मुझे चिन्ता नहीं।"

लालाजीने मुझे स्वयं उक्त घटना सुनाई थी। फर्माते थे कि—"थोड़े दिन तो मुझे पण्डितजीके इस व्यवहारपर रोष-सा रहा, पर धीरे-धीरे मेरा मन मुझे ही धिक्कारने लगा और फिर उनकी इस न्यायप्रियता, सत्यवादिता, निष्पक्षता और नैतिकताके आगे मेरा सर झुक गया, श्रद्धा भक्तिसे हृदय भर गया और मैंने भूल स्वीकार करके उनसे क्षमा माँग ली। पंडितजी तो मुझसे रुष्ट थे ही नहीं, मुझे ही मान हो गया था, अतः उन्होंने मेरी कौली भर ली और फिर जीवनके अन्त तक हमारा स्नेह-सम्बन्ध बना रहा?"

मुझे जिस तरह और जिस भाषामें उक्त संस्मरण सुनाये गये थे, न वे अब पूरी तरह स्मरण ही रहे हैं न उस तरहकी भाषा ही व्यक्त कर सकता हूँ, फिर भी आज जो बैठे-बिठाये याद आई तो लिखने बैठ गया।

—अनेकान्त, मार्च १९४८ ई०

उनकी सीख

महात्मा भगवानदीन

हमने प० गोपालदासजी वरैया-जैसा दूसरा आदमी समाजमें आज तक नही देखा, पर यह वात तो हर आदमीके लिए कही जा सकती है। नीमके पेडके लाखो पत्तोमें कोई दो पत्ते एकसे नही होते, पर सब हरे और नुकीले तो होते है। समाजके हर आदमीसे यह आशा की जाती है कि वह कम-से-कम अपने समाजके मेम्बरोको सताये नही, उनसे झूठा व्यवहार न करे, उनके साथ ऐसे काम न करे, जिनकी गिनती चोरीमें होती है। समाजमें रहकर अपनी लँगोटी और अपने आँखके वाँकपनपर पूरी निगाह रखे और अपनी ममताकी हद वाँधकर रहे। इन पाँच वातोमें, जिन्हें अणुव्रत यानी छोटे व्रत नामसे पुकारा है, वे पूरे-पूरे पक्के थे, और पाँचों अणुव्रतोको ठीक-ठीक निभानेवाला समाजमें हमारे देखनेमें कोई दूसरा आदमी नही मिला। वह पूरे गृहस्थ थे, दुकानदारी भी करते थे, और पडित और विद्वान् होनेके नाते जगह-जगह व्याख्यान देने भी जाते थे और इस नाते आने-जानेका किराया और खर्च भी लेते थे, पर दुकानदारी और इन सव वातोमें जितनी सचाई वह वरतते थे, और किसी दूसरेको वरतते हुए नही देखा है। अगर उन्हें कोई ५० रु० पेशगी भेज दे और घर पहुँचते-पहुँचते उनके पास १० रु० वचे तो वह १० रु० वापिस कर देते थे और दो पैसे वच रहें तो दो पैसे भी वापिस कर देते थे। वह हर तरहसे हिसावके मामलेमें पैसे-पैसेका ठीक-ठीक हिसाव रखते थे। पाँचो व्रतोमेंसे हर व्रतका पूरा-पूरा ध्यान रखते थे और इन व्रतोके प्रति सचाई ही उनमें एक ऐसा जादू वनी हुई थी, जिससे सभी उनकी तरफ़ खिचते थे।

धर्मके मामलेमें आम तौरसे लोग अणुव्रतोमेंसे किसी व्रतकी परवाह नही करते और सचाईके अणुव्रतकी तो विल्कुल ही परवाह नही करते।

एक पण्डितजी ही थे जो धर्म और व्यवहारमें कही भी सचाईको हाथसे नही खोते थे। तभी तो वह उन पण्डितोकी नज़रमें गिर गये जो धर्मके ज्ञाता थे, पर उसपर अमल करनेके अभ्यासी नही थे।

पण्डितजी अणुव्रती थे, पर साथ-ही-साथ परीक्षा-प्रधानतामें पूरा विश्वास रखते थे, और जैसे-जैसे वह परीक्षा-प्रधानताको समझते जाते थे, वैसे-वैसे उसपर अमल करते जाते थे। दूसरो शब्दोमें वह धीरे-धीरे परीक्षा-प्रधानी बनते जा रहे थे कि मौत उन्हें उठाकर ले गई। कोई मनचला यह सवाल उठा सकता है कि क्या वह शुरू-शुरूमें परीक्षाप्रधानी नही थे? हम उसे जवाब देंगे—हाँ, वह नही थे। वह शुरू-शुरूमें अन्ध-श्रद्धानी थे, कोरे कट्टर दिगम्बरी थे। उनकी कट्टरता दिनोदिन कम होती जा रही थी और अगर वह जीते रहते तो वह कट्टरता खत्म हो जाती और फिर वह दिगम्बरी न रहकर जैन बन जाते और अगर कुछ और उम्र पाते तो सर्वधर्म-समभावी होकर इस दुनियासे कूच करते।

हम ऊपरके पैरेमें बहुत बडी बात कह गये है, पर वह छोटे मुँह बडी बात नही है। हमने पण्डितजीको बहुत पाससे देखा है। पण्डितजी हमको बहुत प्यार करते थे और जब भी हम उनसे मिले, उन्होने पूरी एक रात हमसे बिल्कुल जी खोलकर बातें की और हमारी बातें खुले दिलसे सुनी। हमसे जब वह बात करते थे तो एकदम अभिन्न हो जाते थे। हम ये सब कहकर भी यह नही कहना चाहते कि उन्होने हमसे कबूला कि वह कट्टर दिगम्बरी थे। इस तरह बेतुकी बात हम क्यो पूछने लगे और वह हमसे क्यो कहने लगें? हम तो ऊपरकी बात सिर्फ इसलिए लिख रहे है कि हमने उन्हें पाससे देखा है और उनका खुला हुआ दिल देखा है। बस उस नाते और सिर्फ उस नाते हम यह कहना चाहते है कि हम जो कुछ ऊपर कह आये है, वो वह है कि जो हमने नतीजा निकाला है।

हमने यह नतीजा कैसे निकाला, यह बतानेसे पहले हम यह कह देना चाहते है कि जो आदमी परीक्षाप्रधानी बनने जा रहा है, वह किसी धर्म या पन्थका कितना ही कट्टर अनुयायी क्यो न हो, उस आदमीसे लाख

दरजे अच्छा है, जो अन्धश्रद्धानी होते हुए सर्वधर्म-समभावी होनेका दावा करता है। वह तो सर्वधर्म-समभावका नाटक खेलता है, या ढोग रचता है। पण्डितजीने कभी किसी चीजका नाटक नही खेला, वे जब जो कुछ थे, सच्चे जीसे थे और सचाई ही तो पूज्य है, वही तो धर्म है, वही तो अँधेरे से उजालेकी तरफ लेजानेवाली चीज है और वह पण्डितजीमें थी। इस सचाईके बलपर ही वह झट ताड जाते थे कि मै अबतक कौन-सा नाटक खेलता रहा हूँ, और कौन-सा ढोग रचता रहा हूँ। अपनी परीक्षामें जैसे ही उन्होने नाटकको नाटक और ढोगको ढोग समझा कि उसे छोडा। जैसे ही उन्होने परीक्षासे यह जाना कि सोमदेवकृत 'त्रिवर्णाचार' आर्ष ग्रन्थ नही है, वैसे ही उन्होने उसको अलग किया और उसके आधारपर जो पूजाकी क्रियाएँ करते थे, उन्हें धता बताई। धता बताई शब्द जरा भी हम बढकर नही कह रहे है, उन्होने इससे ज्यादा कड़ा शब्द इस्तेमाल किया था।

धर्मके मामलेमें उनकी कही हुई खरी-खरी बातें आज बच्चे-बच्चे की जबानपर है, उन्हें हम दुहराना नही चाहते। हम तो यहाँ सिर्फ इतना ही कहेंगे कि पण्डित गोपालदासजी बरैया सचाईके साथ विचारस्वाधीनता का दरवाजा खोल गये और आज जो स्वामी सत्यभक्तके रूपमें पण्डित दरबारीलालजी स्वाधीन विचारोका चमत्कार दिखा रहे है, वह उसी द्वारसे होकर आये है, जिसका दरवाजा पण्डितजी हिम्मत करके खोल गये थे।

पण्डितजीने सम्यक्त्व, देवता, कल्पवृक्ष, केवलज्ञान, मुक्ति इनके बारेमें ऐसी-ऐसी बातें कही, जिनसे एक मर्तबा समाजमें खलबली मची, पर वैसा तो होना ही था, कुछ दिनो पण्डितजीकी हँसी उडाई गई, फिर जोरका विरोध किया गया, फिर सहन किया गया और फिर मान लिया गया।

पण्डितजीने क्या-क्या काम किये, इनको गिनाकर हम क्या करें, ये काम मुरेना महाविद्यालयका है। हम तो सिर्फ वो ही बातें लिखना

चाहते हैं, जिनका हमारे दिलपर असर है। पण्डितजीको जो सगिनी मिली थी, वह उन्हींके योग्य थी, उनकी सगिनी उनके अणुव्रतोंकी परीक्षा-की कसौटी थी, पर पण्डितजी उस कसौटीपर हमेशा सौटच सोना ही साबित हुए। उनकी सगिनीके स्वभावके बारेमें हमने सुना ही सुना है, पर वह सुना ऐसा नहीं है कि जिसपर विश्वास न किया जाय। हमारा देखा हुआ कुछ भी नहीं है, कोई ये न समझें कि हम ऐसी बात कहकर पूर्वापर-विरोध कर रहे हैं। चूंकि अभी तो हम कह आये हैं कि हमने पण्डितजीको पाससे देखा है और जब पाससे देखा है तो क्या सगिनीको नहीं देखा था, हाँ, देखा था पर हमने कभी उनको ऐसे रूपमें नहीं देखा, जैसा सुन रक्खा था, और इसके लिए तो हम एक घटना लिखे ही देते हैं।

इटावामें 'तत्त्व-प्रकाशिनीसभा'का जलसा था। पण्डितजी अपनी सगिनी समेत वहाँ आये हुए थे। उनकी सगिनी उस वक्त प्रेमीजीके लड़के को जो उस वक़्त वर्ष या डेढ वर्षका होगा, गोदमें खिला रही थी। वह लड़का उनकी गोदमें बुरी तरह रो रहा था, हम उस वक्त तक उनको पण्डितजीकी संगिनीकी हैसियतसे नहीं जानते थे। इसलिए हमने उनकी गोदसे उस लड़केको छीन लिया, और सचमुच छीन लिया, ले लिया नहीं। छीन लिया हम यों कह रहे हैं कि हमने उस बच्चेको लेते वक्त कहा तो कुछ नहीं, पर लेनेके तरीकेसे ये बताया कि हम यह कह रहे हैं कि तुम्हें बच्चा खिलाना नहीं आता और होनहारकी बात कि वह बच्चा हमारी गोदमें आकर चुप हो गया। यह सब कुछ प्रेमीजी खड़े-खड़े देख रहे थे। वे थोड़ी देरमें चुपके-से हमारे पास आकर बोले कि "आप बड़े भाग्यशाली हैं।" मैंने "पूछा—क्यों?" बोले—"आपने पण्डितानीजीसे बच्चा छीन लिया और आपको एक शब्द भी सुननेको नहीं मिला। हम तो उस वक्त न जाने क्या-क्या अदाजा लगा रहे थे।"

उस दिनके बाद हम जब भी पण्डितजीसे मिले, हमने तो उनको इसी स्वभावमें पाया। यही वजह है कि हम उनके स्वभावके बारेमें जो [illegible] बात है।

कुछ भी सही, हाँ तो उनकी सगिनी उनके अणुव्रतकी कसौटी थी और उन्होंने जीवनभर उनका साथ ऐसा निभाया कि जो एक अणुव्रती ही निभा सकता था।

पण्डितजीने जीते जी दूसरी प्रतिमासे आगे बढनेकी कोशिश नही की, लेकिन एकसे ज्यादा ब्रह्मचारियोको हमने उनके पाँव छूते देखा, वह सचमुच इस योग्य थे।

आज जो तत्त्व-चर्चा घर-घरमें फैली हुई है और ऐसी बन गई है, मानो वह माँके पेटसे ही साथ आती हो, ये सब पण्डितजीकी मेहनतका ही फल है। वे गहरी-से-गहरी चर्चाको इतनी आसान बना देते थे कि एक बार तो तत्त्वोका बिल्कुल अजानकार भी ठीक-ठीक समझ जाता था। यह दूसरी बात है कि अपनी अजानकारीके कारण वह उसे ज्यादा देरके लिए याद न रख सके। इसलिए उन्होने 'जैन-सिद्धान्त-प्रवेशिका' नामकी एक किताब लिख डाली थी, उसे आप जैन-सिद्धान्तका जेबीकोश यानी पाकेट डिक्सनरी कह सकते है।

पडितजीकी जीवनीसे जो कुछ सीख ली जा सकती है, उसका निचोड हम यह समझें हैं—

१ सच्चे या अणुव्रती बनना हो तो निर्भीक बनो।

२ निर्भीक बनना है तो किसीकी नौकरी मत करो, अपना कोई रोजगार करो।

३ रोजगार करते हुए अगर धर्म या धर्मचर्चाके वक्ता बनना चाहते हो तो अणुव्रतका ठीक-ठीक पालन करो, तभी दुकान चल सकेगी।

४ अणुव्रतोको अगर ठीक-ठीक पालन करना है तो अपनी हद बाँधो।

५. अपनी हद बाँधनी है तो किसी कर्त्तव्यसे बँधो।

६ कर्त्तव्यको ही अधिकार मानो।

७ अधिकारी बनो, अधिकारके लिए मत रोओ।

—ज्ञानोदय, जुलाई १९५१

सन् १९२० के चैत्रमासमें मैंने अपने साथियोके साथ पण्डित उमराव-सिंहजीको ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजीके नवीन सस्करणके रूपमे पहली बार देखा। काशी सस्कृत विद्याका पुरातन केन्द्र है। हिन्दू-विश्वविद्यालयकी स्थापना हो जानेसे सर्वांगीण शिक्षाका केन्द्र बन गया है। न यहाँ विद्वानो की कमी है और न पुस्तकालयो की. ज्ञानाजन और ज्ञानप्रचारके प्रेमियोंके लिए इससे उत्तम स्थान भारतवषमे नही है। जो ज्ञानानन्दी जीव एक बार उसके वातावरणका अनुभव कर लेता है, उसकी गुजर-बसर, फिर अन्यत्र नही हो पाती। समाजके प्राय समस्त शिक्षालयोके वातावरणका अनुभव करनेके बाद भी ब्रह्मचारीजी अपने पूर्वस्थान बनारसको न भूल सके और कई शिक्षासस्थाओके सचालनका भार स्वीकार करने पर भी उन्होने परित्यक्त बनारसको ही अपना कार्यक्षत्र बनाया।

उन दिनो मध्यप्रदेशके रतौना गाँवमे सरकार एक कसाईखाना खोलनेका विचार कर रही थी, वहाँ प्रतिदिन कई हजार पशुओके कत्ल करनेका प्रबन्ध होने जा रहा था। इस बूचडखानेको लेकर अखबारी दुनियामे खूब आन्दोलन हो रहा था। स्थान-स्थानपर सरकारी मन्तव्यके विरोधमें सभा करके वाइसरायके पास तार भेजे जाते थे। रक्षाबन्धनके दिन स्याद्वादविद्यालयमे भी सभा हुई। बूचडखानेके विरोधमें पूज्य पण्डित गणेशप्रसादजी वर्णीका मर्मस्पर्शी भाषण हुआ। ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजीने बूचडखाना स्थापित होनेके विरोधमें मीठे सेवनका त्याग किया और अहिंसा धर्मका ससारमे प्रचार करनेके लिए एक अहिंसाप्रचारिणी परिषद् स्थापित करनेकी योजना सुझाई।

मै पहले बता चुका हूँ कि ज्ञानानन्दजी किसी आवश्यक विचारको **'काल करै सो आज कर, आज करै सो अब'** सिद्धान्तके पक्के अनुयायी थे। अहिंसा-प्रचारकी प्रस्तावित योजनाको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए उन्होने कलकत्तेकी यात्रा की और दशलाक्षणी पर्व वही बिताया। कलकत्तेकी दानी समाजने उनका खूब सम्मान किया और ८००० रुपये के लगभग अहिंसा-प्रचारके लिए भेंट किये। कलकत्तेसे

लौटते ही ब्रह्मचारीजी अपने काममे जुट गये। अखिल भारतीय अहिंसा प्रचारिणी परिषद्की स्थापना की गई और काशी नागरीप्रचारिणी समिति के भवनमे डा० भगवानदासजीके सभापतित्वमे उसका प्रथम अधिवेशन खूब धूमधामसे मनाया गया। जनतामे परिषद्के मन्तव्योका प्रचार करनेके लिए 'अहिंसा' नामकी साप्ताहिक पत्रिका प्रकाशित की गई। उपदेशक भी घुमाये गये, अजैन जनताने भी परिषद्के कार्यमे अच्छा हाथ वटाया। अनेक रजवाडोने भी सहानुभूति प्रदर्शित की। बहुतसे अजैन रईस एक मुश्त सौ-सौ रुपये देकर परिषद्के आजीवन सदस्य वने।

प्रारम्भमें अहिंसाका प्रकाशन एक-दूसरे प्रेससे हुआ था। पीछे एक स्वतन्त्र प्रेस खरीद लिया गया, जो अहिंसा प्रेसके नामसे ख्यात हुआ। प्राय. अधिकाश मनुष्य आत्मप्रशसाको जितनी चाहसे सुनते है, खरी आलोचनाको उतनी ही घृणासे देखते है, किन्तु ब्र० ज्ञानानन्दजीमें यह वात न थी, वे अपनी आलोचनाको भी वहुत सहानुभूतिके साथ सुनते थे। एक वार कुछ ऐसी ही घटना घटी। ब्रह्मचारीजीने अहिंसा परिषद्के लिए कुछ लिफाफे और लेटर पेपर छपाये थे, जो वढिया थे। हमारी विद्यार्थी-मण्डलीने ब्रह्मचारीजीके इस कार्यको समाजके रुपयेका दुरुपयोग वतलाया था। यह वात ब्रह्मचारीजीके कानो तक पहुँची। अवसर देखकर एक दिन रात्रिके समय हमारी मण्डलीके मुखिया लोगोके सामने उन्होने स्वयं आलोचनाकी चर्चा उठाई। उस समयका उनका प्रसन्न मुख आज भुलाने पर भी नही भूलता। वोले—"मुझे प्रसन्नता है कि तुम लोग मेरे कार्योकी भी आलोचना करते हो। मैने वढ़िया कागजोकी छपाई-में व्यय अपना शौक पूरा करनेके लिए नही किया, किन्तु जमानेकी रफ्तार-को देखते हुए राजा-रईसोके लिए किया है। हम लोग उनका उत्तर सुनकर कुछ सकुचा-से गये, किन्तु फिर कभी उस विषयपर आलोचना नही हुई।

जिन दिनो 'अहिंसा' का प्रकाशन आरम्भ हुआ, उन दिनो भारतके राजनीतिक आकाशमें गाँधीकी आँधीका जोर वढता जाता था। असहयोग आन्दोलनने भारतीयोमें पारस्परिक सहयोगका भाव उत्पन्न करके विदेशी

शासन-प्रणालीको विचलित कर दिया था। अदालतो, कौसिलो, सरकारी स्कूलोका वायकाट प्रतिदिन जोर पकडता जाता था। मशीनगनोकी वर्षाके मुकाबलेपर भारतके राष्ट्रपत्र वान्वाणोकी वर्षा कर रहे थे। घमासान युद्ध मचा हुआ था, किन्तु दुश्मनको मारनेके लिए नही, स्वय मरनेके लिए। रक्त लेनेके लिए नही, रक्त देनेके लिए। क्योकि अहिंसात्मक युद्ध मारना नही सिखाता है।

"जिसे मरना नहीं आया उसे जीना नहीं आता।"

इस परिस्थितिमें जन्म लेकर और राष्ट्रका तत्कालीन अस्त्र 'अहिंसा' का नाम धारण कर 'अहिंसा' राष्ट्रकी आवाजमें आवाज मिलानेसे कैसे पीछे रह सकता था, किन्तु उसकी आवाज राष्ट्रकी आवाजकी प्रतिध्वनि मात्र थी, उसने राष्ट्रिय पत्रोकी बातको दोहराया बेशक, किन्तु कोई 'अपनी बात' न कही। इसका कारण जो कुछ भी रहा हो, परन्तु ब्र० ज्ञानानन्दजीके राष्ट्रप्रेमी होनेमें कोई सन्देह नही है। वे पक्के धर्मात्मा होनेपर भी जननी-जन्मभूमिकी व्यथाको भूले नही थे, राष्ट्रकी प्रत्येक प्रगतिपर उनकी कडी दृष्टि रहती थी और उसपर वे विचार भी करते थे।

उनकी आन्तरिक अभिलाषा थी कि प्रेसके कार्यमें अपने कुछ शिष्योको दक्ष कर दिया जाय और एक विशाल 'छापेखाने'का आयोजन किया जाय। इसलिए वे प्रतिदिन किसी न किसी छात्रको अपने साथ प्रेसमें ले जाते थे। एक दिन मुझे भी ले गये और 'अहिंसा'के 'प्रूफ'—सशोधनका कार्य मुझे सौपकर विश्राम करने लगे। 'प्रूफ' में किसी राष्ट्रिय पत्रकी प्रतिध्वनि थी—यदि मै भूलता नही हूँ तो वह एक प्रहसन था, और शायद 'कर्मवीर' से नकल किया गया था। भारतके राजनैतिक मचके सूत्रधार महात्मा गाँधी और अली बन्धु 'प्रहसन' के पात्र थे। 'प्रूफ' में उक्त प्रहसन अधूरा था और मै उसके आदि और अन्तसे अपरिचित था। प्रूफपर दृष्टि पडते ही मुझे 'मौलाना' गाधी दिखाई दिये। मैं चकराया। आगे बढा तो 'महात्मा' शौकतअलीपर नजर पडी। अब

मैंने 'गाधी-अली' संवादपर दृष्टि डाली तो सब जगह एक-सी ही 'वेवकूफी देखी। सपूर्ण सवादमें गाधीके साथ 'मौलाना' और शौकतअलीके साथ 'महात्मा' शब्दका प्रयोग देखकर मेरा 'टेम्परेचर' भडक उठा और मुझे प्रेसके भूतोकी वेअकलीपर हँसी आ गई। आव देखा न ताव, कलम कुठार उठाकर 'मौलाना' और 'महात्मा' दोनोका शिरच्छेद कर डाला और नई रीतिसे गाधीके साथ महात्मा और शौकतअलीके साथ 'मौलाना' शब्द जोड डाला। इस कार्यमें एक घटेके लगभग लग गया। अब मैं प्रेसके भूतोकी वेवकूफी और अपनी वुद्धिमानीका सुसवाद कहनेके लिए ब्रह्मचारीजीकी निद्रा भग होनेकी प्रतीक्षा करने लगा। उनके उठते ही मैंने प्रूफ उनके सामने रक्खा। अभी मै कुछ कहने भी न पाया था कि ब्रह्मचारीजीके श्रीमुखसे मैंने अपने लिए वे शब्द सुने, जो कुछ देर पहले अपने दिल ही दिलमें, मै प्रेसके भूतोको कह चुका था। ब्रह्मचारीजीकी इस 'नाशुक्री' पर मुझे वडा खेद हुआ, किन्तु जव मुझे मालूम हुआ कि 'प्रहसन' में हिन्दू-मुसलिम एकताका 'प्रहसन' किया गया है तो मेरे देवता कूंच कर गये, और मै प्रेससे 'एक दो तीन' हो गया।

× × ×

'अहिंसा परिषद्' और शिक्षासस्थाओके सचालनमें ब्रह्मचारीजी इतने तल्लीन हुए कि शारीरिक स्वास्थ्यकी ओरसे एकदम उदासीन हो गये। कभी-कभी बुखार आ जानेपर भी दैनिक कार्य करना नही छोडा। जव रोग वढ गया तो चिकित्साके लिए वनारससे वाहर चले गये। ज्वर ने जीर्ण ज्वरका रूप धारण कर लिया, खासी भी हो गई। यक्ष्माके लक्षण प्रकट होने लगे। फिर भी सामाजिक कार्योमें भाग लेना न छोडा। फरवरी १९२३ में देहलीमें जो पञ्च कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था, व्यावर विद्यालयके छात्रोके साथ उसमें वे सम्मिलित हुए थे और सेठके कूंचेकी धर्मशालामें ठहरे थे। मै अपने सहयोगियोके साथ उनसे मिलने गया। उस समय उन्हें ज्वर चढ रहा था और खाँसी भी परेशान कर रही थी। हम लोगोकी आहट पाते ही उठकर वैठ गये और उसी स्वाभाविक मुस्कान-

के साथ हम लोगोसे मिले। किसे खबर थी कि यह 'अन्तिम दर्शन' है? अफसोस!!! उसी वर्ष ग्रीष्मावकाशके समय अपने घरपर एक मित्र के पत्रसे मुझे ज्ञात हुआ कि ब्र० ज्ञानानन्दजीका देहावसान हो गया। पढकर मै स्तम्भित रह गया। रगोमें वहनेवाला खून जमने-सा लगा, मस्तक गर्म हो गया। अन्तमें अपनेको समझाया और उनकी सत्शिक्षा, सद्व्यवहार और कर्तव्यशीलताका स्मरण करके, स्वर्गगत हितैषीको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

मनुष्य जव तक जीवित रहता है, तव तक उसके अत्यन्त निकट रहनेवाले व्यक्ति भी उसका महत्त्व समझनेकी कोशिश नही करते। मेरी भी यही दशा हुई, मैंने भी ब्रह्मचारीजीकी सत्शिक्षाओको सर्वदा उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा। आज जव वे नही है और पद-पदपर उनके ही सदुपदेशोका अनुसरण करना पडता है, तव अपनी अज्ञानतापर अत्यन्त पश्चात्ताप होता है।

—जैनदर्शन, १९४३

पण्डित
पन्नालाल
वाकलीवाल

जैनसमाजके विद्यासागर

श्री धन्यकुमार जैन

"एक काग़ज़ दीजिये न, किताबोपर चढाऊँगा ?"

"एक काग़ज़की क़ीमत दो पैसे है,–पैसे देकर ले सकते हो।"

"यों हो एक दे दीजिये न, बहुत-से तो है ?"

"इनका मैं मालिक नहीं, मैं तो बिना पैसेका नौकर हूँ।"

"तो मालिक कौन है, उनसे कहके दिलवा दीजिये न ?"

"मालिक तो सारा जैन-समाज है,–हम-तुम सभी मालिक हैं; पर लेनेके लिए नही, देनेके लिए।"

सन् १९१४-१५ की बात है। मैं तब स्याद्वादमहाविद्यालय काशीमें शिक्षा पा रहा था। मैदागिनकी जैनधर्मशालाके फाटकके पास भारतीय जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी सस्थाका कार्यालय था, जिसमें बैठे जैन-समाजके सुप्रसिद्ध शिक्षागुरु स्व० प० पन्नालालजी बाकलीवाल पुस्तकें बाँध रहे थे। जिस समय उनसे मेरी उपर्युक्त बातचीत हुई थी, तब मै नही जानता था कि मै उन्हीसे बात कर रहा हूँ, जिनकी लिखी कई पुस्तके मै पढ चुका हूँ और 'मोक्षशास्त्र' आदि अब भी पढ रहा हूँ, जिनपर चढानेके लिए कागज माँग रहा था। तब तो मुझे ऐसा लगा कि बुड्ढा बहुत कजूस है और निर्दयी भी, कि जिसको मेरी विनीत प्रार्थना पर जरा भी दया नही आई। मुझमे तब इतनी समझ ही कहाँ थी कि उनके उन सीमित शब्दोमें अवैतनिक सामाजिक कार्यकर्ताओके उत्तरदायित्वका कितना जबरदस्त उपदेश है। बादमे तो लगभग दस-बारह वर्ष तक मुझे उनके निकट रहकर उक्त सस्थाकी सेवा करनेका सौभाग्य प्राप्त रहा, और खूब अच्छी तरह समझ गया कि अवैतनिक कार्यकर्ता का आदर्श क्या होना चाहिए।

एक मैं ही नही, और भी अनेक ऐसे लेखक हैं, जिनके उत्साहका मूल स्रोत 'गुरु' जी थे। उन्होने अनेकोंको सामाजिक सेवाके लिए तैयार किया और जीवनकी अन्तिम घड़ी तक करते रहे।

गुरुजीके प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें भला मुझे क्या जानकारी हो सकती थी ? हाँ, जब वे पुराने क़िस्से कहनेमें दिलचस्पी लेते थे, तब कुछ-कुछ मालूम होता रहता था। एक जमाना था, जब जैनग्रथ छापने वालोंको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे। गुरुजीने उस समय जैन ग्रंथोका प्रकाशन करना प्रारम्भ कर दिया था। उनकी भावना थी कि जैन-समाजका बच्चा-बच्चा अपने धर्म-सिद्धान्तसे परिचित हो जाय। इसके लिए उन्होंने बीसियो पाठ्य पुस्तकें लिखी; और अन्त तक इस व्रतका वे लगन और उत्साहके साथ पालन करते रहे। मुझे उन्हीसे मालूम हुआ था कि कई पाठ्य पुस्तके उन्होने दूसरोके नामसे प्रकाशित करके उनका इस दिशामें उत्साह बढाया। 'जैन-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय' उन्ही की स्थापना है। जिसने अपने प्रारम्भिक जीवनमें अच्छे-से-अच्छा जैन साहित्यका प्रकाशन किया।

श्रीमान् प० नाथूरामजी प्रेमीकी प्रतिभा देखकर उन्होने उन्हें जैनग्रंथ-कार्यालयका साझीदार बना लिया था, और उनके भरोसे उस कार्यको छोड़कर वे उच्चतर प्रकाशन संस्था और विद्यालयोंकी स्थापना आदि महत्त्वपूर्ण कार्योंमें जुट पडे थे।

श्री प्रेमीजीने अपनी एक पुस्तक समर्पण करते हुए गुरुजीके लिए जो कुछ लिखा है, उससे हम उनकी महानताका अनुमान कर सकते है; वे लिखते हैं—"जिनके अनुग्रह और उत्साहदानसे मेरी लेखनकलाकी ओर प्रवृत्ति हुई और जिनका आश्रय मेरे लिए कल्पवृक्ष हुआ, उन गुरुवर पं० पन्नालालजी बाकलीवालके करकमलोमे सादर समर्पित।"

सन् १९१८ तक जैनसमाजको उनकी कितनी सेवाएँ प्राप्त हुईं, इसका सिलसिलेवार वर्णन तो मैं नही कर सकता, पर इतना जरूर कह

सकता हूँ कि उनके जीवनका कोई भी क्षण जैनसमाजकी सेवाके सिवा उनके निजी कार्यमे नही लगा।

जब वे "जैनहितैषी" निकाला करते थे, तब निर्णयसागर प्रेससे उनका विशेष सम्बन्ध था। निर्णयसागर प्रेसके मालिकोने उन्हीकी प्रेरणासे 'प्रमेयकमलमार्तण्ड', 'अष्टसहस्री', 'यशस्तिलकचम्पू' आदि अनेक जैनग्रथ प्रकाशित किये थे, जिनका कि उस समय जैनसमाज द्वारा प्रकाशन होना असभव-सा था।

बंगालमें जिनवाणी-प्रचार–

बनारससे 'भारतीय जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी सस्था' को कलकत्ता ले गये थे कि बगाली विद्वानोसे मिल-जुलकर उन्हे भगवान् महावीरकी वाणीकी महत्ता सुझाये।

मुझे वे पचासोबार पचासो बगाली विद्वान्, सपादक और लेखकोंके पास ले गये थे। उन्हे वे सस्कृत प्राकृतके जैन ग्रथ भेट किया करते थे, और इस तरह जिनवाणीकी ओर उनका मनोयोग खीचा करते थे। बँगला मासिकपत्रोमे सर्वश्री महामहोपाध्याय विधुशेखर भट्टाचार्य, प० हरिहर शास्त्री, वा० शरच्चन्द्र घोषाल, वा० हरिसत्य भट्टाचार्य्य, प० चिन्ता-हरण चक्रवर्ती प्रमुख अनेक विद्वानोको उन्होने जैन-साहित्यकी ओर आक-र्षित किया था। वे बगीय साहित्य-परिषद्के सभासद् रहे और वहाँ उन्होने अनेक बगाली लेखकोकी जैनसाहित्यकी ओर रुचि बढाई। अन्तमें यह सिलसिला इतना बढता गया कि उनके आसपास बगाली विद्वानोका एक समूह-सा जम गया।

इसी समय उन्होने 'बगीय अहिंसा परिषद्' की स्थापना की और उसकी तरफसे 'जिनवाणी' नामक एक बँगला मासिकपत्रिका प्रकाशित की गई। अहिंसा-परिषद्का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो रहा था, जिसे स्व० रसिकमोहन विद्याभूषण आदि अनेक प्रभावशाली बगाली विद्वान् लेखक और वक्ताओका सहयोग प्राप्त था।

भारतीय जैनसिद्धान्त प्रकाशिनी संस्थाने जैनसिद्धान्तका महत्त्व-पूर्ण प्रकाशन किया; और आज भी, अगर स्व० गुरुजीके निर्देशानुसार ही उसका कार्य जारी रहता तो, और जैसी कि स्व० गुरुजीकी भावना थी, आज निस्संदेह वह 'गीता प्रेस गोरखपुर' और 'कल्याण' जैसी आदर्श संस्था हुई होती। पर जैनसमाजका इतना सौभाग्य कहाँ, जो उसे अपने धर्मकी वास्तविकता समझनेका सुन्दर साहित्य उपलब्ध हो?

मैंने अपनी आँखोंसे गुरुजीको कईबार इसलिए रोते हुए देखा है कि उक्त दोनों संस्थाएँ किसी योग्य, उत्साही और कर्मठ सेवकके हाथ सौंप दी जाएँ, भले ही वह न्यायतीर्थादि उपाधिधारी न हो, पर उसमें लगन और जीवन खपा देनेकी भावना होनी चाहिए।

आज, वंगीय अहिंसा परिषद् और बंगला जिनवाणी' का तो नामो-निशान तक मिट चुका है; और भारतीय जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी सस्था जिससे गुरुजीका 'गीता प्रेस' का स्वप्न मूर्तिमान हो सकता था, कलकत्ते के किसी एक मकानमें पड़ी अपनी अन्तिम साँसें ले रही है।

काशीके स्याद्वादमहाविद्यालयकी स्थापना करनेमें भी आपका हाथ था। 'जैन-हितषी' पत्रके जन्मदाता भी आप ही थे। 'धर्मपरीक्षा' का अनुवाद, 'रत्नकरण्डश्रावकाचार', 'द्रव्यसंग्रह' और 'तत्त्वार्थसूत्र' की छात्रोपयोगी टीकाएँ, 'जैन-बाल-बोधक' (४ भाग) 'स्त्री शिक्षा' (२ भाग) आदि जैनधर्मकी पुस्तकोके सिवा हिन्दीकी सर्वोपयोगी पुस्तकें भी आपने लिखी हैं।

यह तो सन् १९१६–१७ तककी बात है। उसके बाद तो उनके द्वारा बहुत-सी पुस्तकें लिखी गईं, और अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए। सच बात तो यह है कि जैन-समाज, समाज-सेवक और साहित्य-सेवियोंका आदर करना जानती ही नहीं, अन्यथा जैन-समाजमें स्वर्गीय पं० पन्नालाल बाकलीवालका स्थान वही होता, जो बंगालमें स्व० ईश्वरचन्द्र विद्या-सागरका है। भावी जैनसमाजको धर्मज्ञानकी सच्ची शिक्षासे शिक्षित

देखनेकी दीपशिखावत् चिर-प्रज्वलित महान् भावनासे उन्होने जैन शिक्षालयोके लिए पाठ्य-साहित्यका निर्माण-यज्ञ प्रारम्भ किया था।

वह यज्ञ उनकी खुदकी दृष्टिमे अपूर्ण रह गया, यही उनका अन्त समयका पछतावा था, और दूसरा कल्पवृक्ष—जिसका बीज उन्होने भा० जैन-सिद्धान्त-प्रकाशिनी सस्थाके रूपमे बोया था, वह अपने यौवनकालमें ही क्षयरोगग्रस्त हो गया।

युक्ति-अयुक्ति और सभव-असभवका विचार मै नही करना चाहता, मै तो चाहता हूँ कि आज जैन-समाजको कविवर प० बनारसीदासजी, पडितप्रवर टोडरमलजी, दीवान अमरचन्दजी और प० पन्नालाल-वाकलीवाल जैसे महापुरुषोकी आवश्यकता है, और उसकी पूर्ति हो जाय तो जैन-समाज जी जाय।

—दिगम्बर जैन,
दिसम्बर १९४३

पण्डित ऋषभदास

जन्म— चिलकाना, १८६३ ई०

स्वर्गवास— चिलकाना १८९२ ई०

गुदड़ीमें लाल

बाबू सूरजभानु वकील

सहारनपुरसे ६ मीलकी दूरीपर प० ऋषभदासजी चिलकानेके रहनेवाले थे। इनके पिता प० मगलसैनजी ज़मीदार भ थे, वहुधाकर साहूकारी करते थे। प० ऋषभदासजीका देहान्त उनकी २९ वरसकी उमरमें ही, शायद सन् १८९२ ई० में या इसके करीव हो गया उन्होने चिलकानेमें ही किसी मुसलमान मियाँजीसे किसी मकतवमें य उर्दू स्कूलमें तीन-चार वर्ष पढकर सिर्फ कुछ थोडा-सा उर्दू लिखना-पढन सीखा था, जैसा कि उस जमानेमें हमारी तरफ दस्तूर था। हिन्दी लिखना-पढना उन्होने अपने पितासे ही सीखा, और फिर उन्हीके साथ स्वाध्याय करने लगे। इस स्वाध्यायसे ही वह ऐसे अद्वितीय विद्वान् हो गये कि जिसकी कुछ भी प्रशसा नही की जा सकती है। आप वडे तीक्ष्ण-वुद्धि थे। न्याय और तर्कमें आपकी वुद्धि वहुत ही ज्यादा दौडती थी।

चिलकानेसे १४ मीलके फासलेपर कस्वा नकुड है, जहाँका मै रहनेवाला हूँ। यहाँ प० सन्तलालजी जैन, हिन्दी भाषा जाननेवाले जैन-धर्मके अच्छे विद्वान् रहते थे, वह भी वडे तीक्ष्णवुद्धि थे और न्याय तथा तर्कके शौकीन थे। परीक्षामुख और प्रमाण-परीक्षाको खूव समझे हुए थे।

प० ऋषभदासजीके यह वहुत ही नजदीकी रिश्तेदार थे। उन्ही की सगतिसे प० ऋषभदासजीको न्याय और तर्कका शौक हुआ। एकमात्र इस शौक दिलाने या प्रवेश करानेके कारण ही प० ऋषभदासजी अपनेको प० सन्तलालजीका शिष्य कहा करते थे। प० मगलसैनजीने अपने दोनो बेटोको अलग-अलग साहूकारीकी दूकान करा दी थी और स्वय एक तीसरी दूकान साहूकारीकी करते थे।

सन् १८८६ ई० में कस्वे रामपुर जिला सहारनपुरके उत्सवमें मै भी गया और पं० ऋषभदासजी भी गये। मै उन दिनो सहारनपुरमें

अपने चाचा ला० बुलन्दराय वकीलके वकालतके इम्तिहानकी तैयारीके वास्ते रहता था। वे और उनके पिता रायसाहब मथुरादास इंजिनियर आर्यसमाजी थे। रामपुरके जैन उत्सवमें मेरे साथ बा० बुलन्दराय भी गये थे, वहाँ उन्होने जैन पण्डितोके साथ ईश्वरके कर्ता-अकर्ता होनेकी बहस उठाई। जब मैंने देखा कि जैन पण्डितोके उत्तरसे उनकी पूरी तसल्ली नही होती है, तब स्वय मुझे ही उनके सन्मुख होना पड़ा और बेधडक तर्क-वितर्क करके उनको कायल कर दिया। इस समय तक मेरी और ऋषभदासजीकी कुछ जान-पहचान नही थी। क्योकि इससे पहले मेरा रहना परदेशमें ही होता रहा था। यह हमारी बहस प० ऋषभदासजीने बडे गौरसे सुनी, जिससे उनके हृदयमें मुझसे मित्रता करनेकी गहरी चाह हो गई। सभा विसर्जन होनेपर जब सब अपने-अपने डेरेपर वापिस जा रहे थे, पं० ऋषभदासजी भी हमारे साथ हो लिये और बाबू बुलन्दराय-से इस विषयमें कुछ तर्क-वितर्क करना चाहा। अत हम सब लोग रास्ते ही में एक जगह बैठ गये और ऋषभदासजीने नये-नये तर्क करके उनको बहुत ही ज्यादा कायल कर दिया, जिससे मेरे मनमें भी उनसे मित्रता करनेकी गहरी इच्छा हो गई। इस इच्छासे वे रात्रिको मेरे डेरेपर आये और हमारी उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गई, जो अन्त तक रही। उनको अक्सर सहारनपुर आना पडता था। जब-जब वे आते थे, मुझसे जरूर मिलते थे और धार्मिक सिद्धान्तोपर घण्टो बातचीत होती रहती थी।

मेरे पितामहके भाई रायसाहब मथुरादास इजिनियरकी बहस ईश्वरके सृष्टिकर्ता विषयपर बहुत दिनोसे प० सन्तलालजीसे लिखित रूपसे चल रही थी। रायसाहब आर्यसमाजके बडे-बडे विद्वान् पण्डितोसे उत्तर लिखवाकर उनके पास भेजा करते थे। अन्तमें प० सन्तलालजीने जो उत्तर दिया, वह बहुत ही गौरवका था, जिसका उत्तर लिखनेको राय-साहबने पं० भीमसैनजीके पास भेजा जो आर्यसमाजमें सबसे मुख्य विद्वान् थे और स्वामी दयानन्दके बाद उनके स्थानमें अधिष्ठाता माने जाते थे। भीमसैनजीने अपने आर्यसमाजी विद्वान्के उस उत्तरको, जिसका प्रतिउत्तर

प० सन्तलालजीने दिया था, दूषित बताकर स्वय नवीन उत्तर लिखकर भेजा, जिससे यह बहस बिल्कुल ही नवीन रूपमें बना दी गई। इस समय प० सन्तलालजीका देहान्त हो चुका था। इस कारण रायसाहबने भीमसैनजीका लिखा हुआ यह नवीन उत्तर वा नवीन तर्क मेरे पास भेजकर जैन पण्डितोसे इसका उत्तर लिखकर भेजनेको बहुत दबाया।

रायसाहबका यह खयाल था कि प० भीमसैनजी-जैसे महान् विद्वान्-के इस नवीन तर्कका जवाब किसी भी जैन पण्डितसे नही दिया जावेगा। इस ही कारण उन्होने बडे गर्वके साथ मुझको लिखा था कि यदि तुम्हारे जैन पडित इसका उत्तर न दे सकें तो तुम जैनधर्मपरसे अपना श्रद्धान त्यागकर आर्यसमाजी हो जाओ।

मैंने प० भीमसैनजीकी इस बहसको सहारनपुरमें सब ही जैन विद्वानोको दिखाया और इसका उत्तर लिखनेकी प्रार्थना की, परन्तु कोई भी इसका उत्तर लिखनेको तैयार नही हुआ। जब इस भारी लाचारी का जिक्र प० ऋषभदासजीसे किया गया तो उन्होने कहा कि घबराओ मत इसका उत्तर मै लिख दूंगा, और छ दिनोके बाद उन्होने उसका उत्तर लिखकर मेरे पास भेज दिया और वह मैंने रायसाहबके पास भेज दिया, जिसको पढकर रायसाहब और उनके आर्यसमाजी विद्वान् ऐसे कायल हुए कि फिर आगे इस बहसको चलानेकी उनकी हिम्मत नही हुई और बहस बन्द कर दी गई। इन ही दिनो पं० चुन्नीलाल और मुशी मुकुन्द-राय मुरादाबाद-निवासी दो महान् जैन परोपकारी विद्वान् सारे हिन्दुस्तान में जैन जातिकी उन्नति और उत्थानके वास्ते दौरा करते फिरते थे। जहाँ-जहाँ वे जाते थे, वहाँ-वहाँ जैन-सभा और जैन-पाठशाला स्थापित कराते थे। इस प्रकार उन्होने सैकडो स्थानोपर सभा और पाठशाला स्थापित करा दी थी। मथुरामें जैन-महासभा और अलीगढमें जैनमहाविद्यालय भी उन्होने ही स्थापित कराये थे। दो साल इस प्रकार दौरा करनेके बाद मुशी मुकुन्दरायको गठियाबाय हो गई, तो भी उन्होने दौरा करना नही छोडा। फिर एक वर्षके बाद उनका देहान्त हो गया। वे महान् विद्वान्,

सभाचतुर और महान् उच्च कोटिके वक्ता और उपदेशक थे। उनके देहान्तके कारण यह दौरा बन्द हो गया और महासभा भी बन्द हो गई।

फिर इसके दो वर्षके बाद मैंने मथुरा जाकर यह महासभा स्थापित कराई थी और जैनगजट जारी किया था, जो अब चल रहे है। दौरा करते समय जब यह दोनो विद्वान् सहारनपुर आये थे, तब मैंने प० ऋषभदासजी का लिखा हुआ प० भीमसैनजीके महान् तर्कका उत्तर इन दोनो विद्वानोको दिखाकर पूछा था कि यह उत्तर ठीक है या नही ? जिसको देखकर उन्होने कहा था कि यह उत्तर अत्यन्त ही उच्च कोटिका है और किसी महान् शिरोमणि जैन विद्वान्का लिखा हुआ है, तब मैंने जाहिर किया कि यह ऋषभदासजीका लिखा हुआ है तो उन्होने किसी तरह भी विश्वास नही किया और कहा कि हम उसको अच्छी तरह जानते है। यह उत्तर ऐसे नौजवानका नही हो सकता है, यह तो किसी महान् अनुभवी विद्वान् का ही लिखा हुआ है।

तब मैंने ऋषभदासजीको बुलवाकर इन विद्वानोके सामने पेश किया, और कहा कि आप इनकी भली-भाँति परीक्षा कर लें, यह इन्हीका लिखा हुआ है। तिसपर मुंशी मुकुन्दरायजीने दो घण्टे तक तर्कमें उनकी कड़ी परीक्षा ली और अन्तमें आश्चर्यके साथ यह मानना ही पडा कि यह महान् उत्तर इन्हीका लिखा हुआ है।

इसके बाद मेरा उनका यही मशविरा हुआ कि इस विषयपर एक ऐसी महान् पुस्तक लिख दी जावे, जिसमें सब ही तर्क-वितर्कोका उत्तर आ जावे और कोई भी बात ऐसी बची न रहे, जिसकी बाबत किसी विद्वान् से पूछनेकी जरूरत रहे। इस मशविरेके बाद ही उन्होने 'मिथ्यात्वनाशक नाटक' लिखना शुरू किया और एक वर्षकी रात-दिनकी भारी मिहनतके बाद यह महान् अद्भुत भारी पुस्तक तैयार हो पाई। तैयारीके कुछ दिनो पीछे ही, उनकी दूकानमें रातको चोरी होकर यह पुस्तक भी चोरी चली गई।

पक्का सन्देह उनका यही था कि पुस्तकके ही चुरानेके वास्ते ईर्ष्या-वश किसीने यह चोरी कराई है, जिसपर उन्होने धैर्य धर, फिर दोबारा

लेख बडे परिश्रमसे लिखे गये थे जो स्थायी साहित्यकी चीजें हैं। अभी दो-तीन वर्ष पहले अनेकान्तमें भी आपके कई मार्केके लेख निकले हैं।

द्रव्यसग्रह, पट्पाहुड, परमात्मप्रकाश, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय और वसुनन्दि श्रावकाचारके हिन्दी अनुवाद भी आपके किये हुए हैं और उनमें द्रव्यसग्रहकी टीका तो आपकी बहुत ही अच्छी है और अब भी उसका खासा प्रचार है।

आदिपुराण-समीक्षा, हरिवशपुराण-समीक्षा और पद्मपुराण-समीक्षा ये तीन परीक्षा ग्रन्थ उस समय लिखे गये थे, जब लोग आचार्योंके कथा-ग्रन्थ लिखनेके अभिप्रायको अर्थात् कथाके छलसे बालबुद्धि जीवोको हितोपदेश देनेके उद्देश्यको न समझते थे और प्रत्येक कथाको केवलीकी वाणी मानते थे। इसीलिए इनके प्रकाशित होनेपर कुछ लोग बुरी तरह बौखला उठे थे। उनमें बाबूजीने जो कुछ लिखा है, उससे मतभेद हो सकता है, परन्तु उनके सदुद्देश्यमें शका करनेको कोई स्थान नही है। जैन-समाजमें किसी तरहके मिथ्या विश्वास बने रहें, इसे वे सहन नही कर सकते।

ज्ञान सूर्योदय (दो भाग), कर्त्ता खण्डन, कर्म फिलासफी, जैनधर्म-प्रवेशिका, श्राविका धर्म-दर्पण, भाग्य और पुरुषार्थ, युवकोकी दुर्दशा, जैनियोकी अवनतिके कारण आदि और भी अनेक पुस्तकें और निबन्ध आपके लिखे हुए हैं।

मेरा प्रस्ताव है कि बाबूजीके तमाम साहित्यको सगृह किया जाय और उसका बारीकीसे अध्ययन करके वे सब चीजे जो 'आउट आफ डेट' नही हुई है, दो-तीन जिल्दोमें प्रकाशित की जायँ। वे ७५ वर्षके हो चुके है। उनके जीतेजी ही यह काम हो जाय तो कितना अच्छा हो[1]।

—दिगम्बर जैन

दिसम्बर १९४३

१—खेद है कि बाबूजीका १९४५ में स्वर्गवास हो गया।

जैन-जागरणके दादा भाई

श्री कन्हैयालाल मिश्र, प्रभाकर

हमारे चिर अतीतमें, जीवनकी एक विषम उलझनमे फँसे, सस्कृतके कविने दुखी होकर कहा था—

"जानामि धर्मं, न च मे प्रवृत्तिः !
जानाम्यधर्मं, न च मे निवृत्तिः !"

धर्मको मै जानता तो हूँ, पर उसमें मेरी प्रवृत्ति नही है ! अधर्म को भी मै जानता हूँ, पर हाय, उससे मै बच नही पाता !

जीवनकी यह स्थिति बडी विकट है। अचानक गिरना सरल है, जानकर गिरना कठिन, जानकर और फिर रुकनेकी इच्छा रहते ! भूलसे गिरनेमें शरीरकी क्षति है, जानकर गिरनेमें आत्माका हनन है। हमारा समाज आज इसी आत्म-हननकी स्थितिमें जी रहा है। कौन नही जानता कि स्त्रियोको पर्देमें रखना, अपनी वशावलिपर हल्का तेजाब छिडकना है। विवाहकी आजकी प्रथा किसे सुखकर है? और सक्षेपमें हमारा आजका जीवन किसे पसन्द है ? हम आज जिस चक्रमें उलझे घूम रहे है, उसे तोडना चाहते है, पर तोड नही पाते।

परम्पराके पक्षमें एक बहुत बडी दलील है, उसकी गति। परम्परा बुरी है या भली, चलती रही है, उसके लिए किसी उद्योगकी जरूरत नही

है। कौन उससे लडकर उद्योग करे, नया झगडा मोल ले। फिर हम समाज-जीवी है। जब सारा समाज एक परम्परामें चल रहा है, तो वह अकेला कौन है, जो सबसे पहिले विद्रोहका झण्डा खडा करे, नक्कू बने ?

अच्छा, कोई हिम्मत करे, नक्कू बननेको भी तैयार हो चले, तो उसके भीतर एक हडकम्प उठ आता है—लोग क्या कहेंगे ? और ये लोग ? जिन्हें सहीको गलत कहनेकी मास्टरी हासिल है और जो नारदके खानदानी एव मन्थराके भाई-बहन है, ऐसा बवण्डर खडा करेंगे, सत्यके विरुद्ध ऐसा मोर्चा बाँधेंगे कि यही प्रलयका नजारा दिखाई देगा।

चलो, इस मोर्चेसे भी लडेंगे ! असत्यका मोर्चा, सत्यके सिपाही को लडना ही चाहिए, पर चारो ओरके ये समझदार साथी जो घेर बैठे—"हाँ हाँ, बात तुम्हारी ही ठीक है, पर तुम्ही क्यो अगुवा बनते हो। अकेला चना भाडको नही फोड सकता ! इन सब बुराइयोको तो समय ही ठीक करेगा। याद नही, रामूने सिर उठाया, बिरादरीके पचोने उसे कुचल दिया। फिर तुम्ही तो सारे समाजके ठेकेदार नही हो। बडोसे जो बात चली आ रही है, उसमें जरूर कुछ सार है। तुम्ही कुछ अक्लके पुतले नही हो—समाजमें और भी विद्वान् है। चलो अपना काम देखो, किस झगडेमें पडे जी !"

विचारका दीपक भीतर जल रहा है, धुंधला-सा, नन्हा-सा, टिम-टिमाता। तेल उसमें कोई नही डालता, उसे बुझानेको हरेककी फूंक बेचैन है। दीपकमें गरमी है, वह जीवनके लिए सघर्ष करता है, उसकी लौ टिम-टिमाती है, ठहर जाती है, पर अन्तमें निराशाका झोका आता है, वह बुझ जाता है। पता नही, हमारे समाजमें रोज तरुण-हृदयोमें विचारोके दीपक कितने जलते है और यो ही बुझ जाते है। काश, वे सब जलते रह पाते, तो आज हमारा समाज दीपमालिकाकी तरह जगमग-जगमग दिखाई देता।

सुना है, हाँ, देखा भी है, दीपक हवाके झोकेसे बुझ जाता है, हवा नही चाहती कि प्रदीप जले, दोनोमें शत्रुता है, पर वनमें ज्वाला जलती

है, तो आँधी ही उसे चारो ओर फैलाकर कृतार्थ होती है, दोनोमें अभिन्न मित्रता है। बा० सूरजभान एक ज्वालाकी तरह, अपनी तरुणाईकी मदभरी अँगडाइयोमें, समाजके अँधेरे आँगनमें उभरे। विरोधकी आँधियाँ उठी, घहराईं, पर वे दीपक न थे कि बुझ जाते, अज्ञानके दारुण दर्पको दहते, चारो ओर फैल गये। भारी लक्कडके बोझसे दब, छोटी चिनगारी बुझ जाती है, पर होलीकी लपट, इन्ही लक्कडोकी सीढियोपरसे चढ आसमानके गले लगती है। पता नही, जब बाबूजी जन्मे, किस ज्योतिषी-ने उनकी भावीका लेख पढा और उस सुकुमार शिशुको यह जलता नाम दिया—सूर्यकी तरह वे अँधेरेमें उगे और उसे छिन्न-भिन्न कर आसमानमें आ चमके! इन सब परिस्थितियोका हम अध्ययन न करें, अपने मनमें विरोधकी आँधियोके झकोरोका बल न तोल पायें, तो देवताकी तरह हम बाबू सूरजभानकी मूर्तिपूजा भले ही कर लें, उनके कार्योका महत्त्व नही समझ सकते। तब उनके कार्य हमारे उत्सव-गीतोमें स्वर भले ही भरें, हमारे अँधेरे अन्तरका आलोक और टूटे घुटनोका बल नही हो पाते! ऐसा हम कब चाहेंगे?

तब आजकी तरह हरेक दफ्तरपर 'नो वैकेंसी' की पाटी नही टँगी थी, वे चाहते तो आसानीसे डिप्टी कलक्टर हो सकते थे, पर नौकरी उन्हें अभीष्ट न थी, वे वकील बने और थोडे ही दिनोमें देवबन्दके सीनियर वकील हो गये। वकीलकी पूँजी है वाचालता और सफलताकी कसौटी है झूठ-पर सचकी सुनहरी पालिश करनेकी क्षमता। और बाबू सूरजभान एक सफल वकील, मूक साधना जिनकी रुचि और सत्य जिनकी आत्माका सम्बल! कायेमें कुफ्र हो, न हो, यहाँ मयखानेसे एक पैगम्बर ज़रूर निकला।

बाबू सूरजभान वकील, अपने मुवक्कलोके मुकदमे तो उन्होने थोडे ही दिन लडे—वे कचहरियाँ उनके लायक ही न थी—पर वकील वे जीवन भर रहे, आज ७५ वर्षके बुढापेमें भी वे वकील है और रात-दिन मुकदमे लडते है, न्यायकी अदालतमें, खोजकी हाईकोर्टमें, असत्यके विरुद्ध सत्यके मुकदमे। सस्कृतिकी सम्पदापर कुरीतियोके कब्जेके

असाधारण आकारके घन-पिण्डमें अपना और अपने हृदय-मन्दिरकी दिव्य तपस्वी-मूर्तियोका उबलता हुआ रक्त दिया है, जैनो और भारतीयोके उग्र तपोधन देवोका प्रत्येक जीवन-मार्गमें स्वपर-भेद जनित वासनाओंको भस्मीभूत करके सार्वहितके लक्षसे प्रगतिका क्रियात्मक सचालन किया और कराया है। भारतवर्षीय जैनशिक्षा-प्रचारक समितिका सगठन स्वर्गीय दयाचन्द्र गोयलीय और उनके वर्गके अन्य सत्यहृदयी कार्यकर्ता—मोती,[1] प्रताप[2], मदन[3], प्रकाश[4] की जैसी राजनैतिक

१—स्वर्गीय वीर-शहीद मोतीचन्द सेठीजीके शिष्य थे। इन्हे आराके महन्तको वध करनेके अभियोगमें (सन् १९१३) में प्राण-दण्ड मिला था। गिरफ्तारीसे पूर्व पकड़े जानेकी कोई सम्भावना नहीं थी। यदि शिवनारायण द्विवेदी पुलिसकी तलाशी लेनेपर स्वयं ही न बहकता तो पुलिसको लाख सर पटकने पर भी सुराग़ नहीं मिलता। पकडे जानेसे पूर्व सेठीजी अपने प्रिय शिष्योंके साथ रोज़ानाकी तरह घूमने निकले थे कि मोतीचन्दने प्रश्न किया "यदि जैनोंको प्राणदण्ड मिले तो वे मृत्युका आलिङ्गन किस प्रकार करें?" बालकके मुँहसे ऐसा वीरोचित, किन्तु असामयिक प्रश्न सुनकर पहले तो सेठीजी चौंके, फिर एक साधारण प्रश्न समझकर उत्तर दे दिया। प्रश्नोत्तरके एक घटे बाद ही पुलिसने घेरा डालकर गिरफ़्तार कर लिया, तब सेठीजी, उनकी मृत्युसे वीरोचित जूझनेकी तैयारीका अभिप्राय समझे। ये मोतीचन्द महाराष्ट्र प्रान्तके थे। इनकी स्मृतिस्वरूप सेठीजीने अपनी एक कन्या महाराष्ट्र प्रान्त-जैसे सुदूर देशमें ब्याही थी। सेठीजीके इन अमर शहीद शिष्योंके सम्बन्धमें प्रसिद्ध विप्लववादी श्री शचीन्द्रनाथ सान्यालने "बन्दी जीवन" द्वितीय भाग पृ० १३७में लिखा है—"जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी उन्होंने कर्तव्यकी ख़ातिर देशके मङ्गलके लिए सशस्त्र विप्लवका मार्ग पकडा था। महन्तके खूनके अपराधमें वे भी जब फाँसीकी कोठरीमें कैद थे, तब उन्होंने भी

आत्मोत्सर्गी चौकडियाँ मेरे सामने इस असमर्थ दशामें भी चिर आराध्य पदपर आसीन है; प्रात.स्मरणीय आदर्श पण्डितराज गोपालदासजी वरैया, दानवीर सेठ माणिकचन्द्र और महिला-ज्योति मगन बहन आदिके नेतृत्व-मण्डलका मै अगीभूत पुजारी अद्यावधि हूँ और पर्देकी ओटमें उन सबकी सत्तावाटिकाका निरन्तर भोगी भी हूँ और योगी भी। कौन किधर कहाँसे, यहाँ क्या और वहाँ क्या इत्यादि प्रत्येक प्रश्नके उत्तरमे मेरे लिए तो उक्त दिव्य महापुरुषोकी आत्माएँ ही अचूक परीक्षा-कसौटीका काम

जीवन-मरणके वैसे ही सन्धिस्थलसे अपने विप्लवके साथियोंके पास जो पत्र भेजा था, उसका सार कुछ ऐसा था—"भाई मरनेसे डरे नहीं, और जीवनकी भी कोई साध नहीं है; भगवान् जब जहाँ जैसी अवस्थामें रक्खेंगे, वैसी ही अवस्थामें सन्तुष्ट रहेंगे।" इन दो युवकोंमेंसे एकका नाम था मोतीचन्द और दूसरेका नाम था माणिकचन्द्र या जयचन्द्र। इन सभी विप्लवियोके मनके तार ऐसे ऊँचे सुरमें बँधे थे जो प्रायः साधु और फ़क़ीरोंके बीच ही पाया जाता है।"

२—प्रतापसिंह वीर-केसरी ठाकुर केसरीसिंहके सुपुत्र और सेठीजीके प्रिय शिष्य थे। सेठीजीके आदेशसे ये उस समयके सर्वोच्च क्रान्तिकारी नेता स्वर्गीय रासविहारी बोसके सम्पर्कमें रहते थे। इनके जाँबाज़ कारनामे और आत्मोत्सर्गकी वीरगाथा 'चाँद' वग़ैरहमें प्रकाशित हो चुकी हैं।

३—मदनमोहन मथुरासे पढ़ने गये थे, इनके पिता सर्राफा करते थे। सम्पन्न घरानेके थे। सम्भवतः इनकी मृत्यु अचानक ही हो गई थी। इनके छोटे भाई भगवान्दीन चौरासीमें सन् १४-१५में मेरे साथ पढते रहे है, परन्तु मदनमोहनके सम्बन्धमें कोई बात नहीं हुई। बाल्यावस्था-के कारण इस तरहकी बातें करनेका उन दिनों शऊर ही कब था?

४—प्रकाशचन्द सेठीजीके इकलौते पुत्र थे। सेठीजी की नज़रबन्दीके समय यह बालक थे। उनकी अनुपस्थितिमें अपने-परायोंके व्यवहार

देती है, चाहे उस समयमें और अब जीवोके परिणामो और लेश्याओंमें जमीन-आस्मानका ही अन्तर क्यो न हो गया हो।

सतनामें परिषद्का अधिवेशन पहला मौका था, तब उल्लेखनीय जैनवीर-प्रमुख श्री .....के द्वारा आपसे मेरी भेंट हुई थी। मै कई वर्षोंके उपयुक्त मौनाग्रहव्रतके बाद उक्त अधिवेशनमें शरीक हुआ था। इधर-उधर गत-युक्तके सिंहावलोकनके पश्चात् मै वहाँ इस नतीजे पर पहुँच चुका था कि आपमें सत्य-हृदयता है और अपने सहधर्मी जन-बन्धुओके प्रति आपका वात्सल्य ऊपरकी झिली नही है, किन्तु रगोरेशे में खौलता हुआ खून है, परन्तु तारीफ यह है कि ठोस काम करता है और बाहर नही छलकता।.....

इस तरह मुझे तो दृढ प्रतीत होता है कि आपके सामने यदि मै जैनसमाजके आधुनिक जीवन-सत्त्वके सम्बन्धमें मेरी जिन्दगी भरकी सुलझाई हुई गुत्थियोको रख दूं तो आप उनको अमली लिबासमें ज़रूर रख सकेंगे। अपेक्षा—विचारसे यही निश्चयमें आया।

बन्धुवर,

आपने राष्ट्रिय राजनैतिक क्षेत्रके गुटोमें घुल-घुलकर काम किया है, उसकी रग-रगसे आप वाकिफ हो चुके है और तजरुबेसे आपको यह स्पष्ट हो चुका है कि हवाका रुख किधरको है। इसीसे परिणाम-स्वरूप आपने निर्णय कर लिया कि जैनेतरोकी ज्ञात व अज्ञात भक्ष्य-भक्षक प्रतिद्वन्द्विताके मुकाबिलेमें सदियोके मारे हुए जैनियोके रग-पटठोमें जीवन-सग्राम और मूल संस्कृतिकी रक्षाकी शक्ति पैदा हो सकती है तो केवल

तथा आपदाओके अनुभव प्राप्त करके युवा हुए। सेठीजी ५-६ वर्षकी नज़रबन्दीसे छूटकर आये ही थे कि उनकी प्रवास-अवस्थामें ही अकस्मात् मृत्यु हो गई। सेठीजीको इससे बहुत आघात पहुँचा। इन्ही प्रकाशकी स्मृति-स्वरूप इनके बाद जन्म लेने वाले पुत्रका नाम भी उन्होंने प्रकाश ही रक्खा।

उन्ही साधनो और उपायोसे जो दूसरे लोग कर रहे है, अथवा जिनमें बहुत कुछ सफलता जैनोके सहयोगसे मिलती है।.....

आपके सामने आधुनिक काल-प्रवाहके भिन्न-भिन्न आन्दोलन-समूह धार्मिक वा सामाजिक, वाञ्छनीय वा अवाञ्छनीय, हेय वा उपादेय, उपेक्षणीय वा अनुपेक्षणीय, आदरणीय वा तिरस्कार्य, व्यवहार्य वा अव्यवहार्य, लाभप्रद वा हानिकर इत्यादि अनेक रूप-रूपान्तरमें मौजूद है। उनमेंसे प्रत्येकका तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओका गृहस्थ तथा त्यागी, श्रावक-श्राविकाओके दैनिक जीवनपर एवं मन्दिर-तीर्थो अथवा अन्य प्रकारकी नूतन और पुरातन सस्थाओपर पड़ा है, वह भी आपके सम्मुख है। मै तो प्राय सबमें होकर गुजर चुका हूँ, और उनके कतिपय कड़वे फल भी खूब चाख चुका हूँ और चाख रहा हूँ। अत आपका और आपके सहकारी कार्यकर्ताओका विशेष निर्णायक लक्ष इस ओर अनिवार्य-अटल होना चाहिए। नही तो जैन सगठन और जैनत्वकी रक्षाके समीचीन ध्येयमें केवल बाधाएँ ही नही आयेगी, धक्का ही नही लगेंगे, प्रत्युत नामोनिशान मिटा देनेवाली प्रलय भी हो जाय तो मानवजातिके भयावह उथल-पुथलके इतिहासको देखते हुए कोई असम्भव बात नही है। अल्पसख्यक जातियोको पैर फूंक-फूंककर चलना होता है और बहुसख्यक जातियोके बहुतसे आन्दोलन जो उन्हीको उपयोगी होते है, अल्पसख्यकोमें घुस जाते है और उनके लिए कारक होनेकी अपेक्षा मारकका काम देते है। उनकी बाहरी चमक लुभावनी होती है, कई हालतोमें तो आँखोमें चकाचौध पैदा कर देती है, मगर वास्तवमें Old is not gold glitters हरेक चमकदार पदार्थ सोना ही नही होता। बहुसंख्यक लोगोकी तरफसे मखमली खूबसूरत पलगोसे ढके हुए खड्डे विचारपूर्वक वा अन्त स्थित पीढ़ियोके स्वभावज चक्रसे तैयार होते रहते है, जिनके प्रलोभन और ललचाहटमें फँसकर अल्पसख्यक लोग शत्रुको ही मित्र समझने लगते है, यही नही; किन्तु अपने सत्त्व-स्वत्वकी रक्षाका खयाल तक छोड बैठते है। किमधिकम्, इस स्व-रक्षणकी भावना वासना भी

उनको अहितकर जँचने लगती है। इसके अलावा भावी उदयावलीके वल अथवा यो कहूँ कि कालदोषसे अभागे अल्पसख्यकोमेंसे कोई कस जैसे भी पैदा हो जाते है जो अपने घरके नाश करनेपर उतारू हो जाते है, गैरो के चिराग जलाते है और पूर्वजोके घरको अँधेरा नरक वना देते है।

.....इस तरह जैन कुलोमें, जैन पञ्चायतोमें, जैन गृहोमे चलती-चलाती ठण्डी पड़ी हुई आम्नायोमें कलह, भीषण क्षोभ और तत्काल-स्वरूप तीव्र कषायोदय और अशुभ वन्धके अनेक निमित्त कारणोंसे वचाकर जैनोका रक्षण, सगठन और उत्थान होगा, तभी इस समयकी लपलपाती हुई अनेकान्त-नाशक जाज्वल्यमान दावाग्निसे जैनधर्म और जैनसस्कृति स्थिर रहेगी।

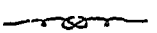

[१]

[यह पत्र सेठीजीने मुख्तार साहबको लिखा था, जो कि अनेकान्त वर्ष १ किरण ४ में प्रकाशित हुआ था।]

बन्धुवर,

अनेकान्त-साम्यवादीकी जय

अनेक द्वन्द्वोके मध्य निर्द्वन्द्व 'अनेकान्त'की दो किरणें सेठीके मोह-तिमिराच्छन्न बहिरात्माको भेदकर भीतर प्रवेश करने लगी तो अन्तरात्मा अपने गुणस्थान-द्वन्द्वमेंसे उनके स्वागतके लिए साधन जुटाने लगा। परन्तु प्रत्याख्यानावरणकी तीव्र उदयावलीने अन्तरायके द्वारा रूखा जवाब दे दिया, केवल अपायविचयकी शुभ भावना ही उपस्थित है। आधुनिक भिन्न-भिन्न एकान्ताग्रह-जनित साम्प्रदायिक, सामाजिक एव राजनैतिक विरोध व मिथ्यात्वके निराकरण और मथनके लिए अनेकान्त-तत्त्ववादके उद्योतन एव व्यवहाररूपमें प्रचार करनेकी अनिवार्य आवश्यकताको मैं वर्षोंसे महसूस कर रहा हूँ। परन्तु तीव्र मिथ्यात्वोदयके कारण आम्नाय-पथ-वादके रागद्वेषमें फँसे हुए जैन नामाख्य जनसमूहको ही जैनत्व एवं अनेकान्त-तत्त्वका घातक पाता हूँ, और जैनके अगुवा वा समाजके कर्णधारोको ही अनेकान्तके विपरीत प्ररूपक वा अनेकान्ताभास-के गर्तमें हठ रूपसे पडे देखकर मेरी अब तक यही धारणा रही है कि अनेकान्त वा जैनत्व नूतन परिष्कृत शरीर धारण करेगा जरूर, परन्तु उसका क्षेत्र भारत नही, किन्तु और ही कोई अपरिग्रह-वादसे शासित देश होगा।

अस्तु, अनेकान्तके शासनचक्रका उद्देश्य लेकर आपने जो झडा उठाया है, उसके लिए मै आपको और अनेकान्तके जिज्ञासुओको वधाई देता हूँ और प्रार्थनारूप भावना करता हूँ कि आपके द्वारा कोई ऐसा युग-प्रधान प्रकट हो, अथवा आप ही स्वय तद्रूप अन्तर्वाह्य विभूतिसे सुसज्जित हो, जिससे एकान्त हठ-शासनके साम्राज्यकी पराजय हो, लोकोद्धारक विश्व-व्यापी अनेकान्त शासनकी व्यवस्था ऐसी दृढतासे स्थापित हो कि

चहुँओर कम-से-कम षष्ठ गुणस्थानी जीवोका धर्मशासन-काल मानव-जातिके—नही-नही जीवविकासके इतिहासमें मुख्य आदर्श प्राप्त करे, जिससे प्राणिमात्रका अक्षय्य कल्याण हो।

इसके साथ यह भी निवेदन कर देना उचित समझता हूँ कि अब इस युगमें साख्य, न्याय, बौद्ध आदि एकान्त दर्शनोसे अनेकान्तवादका मुकाबिला नही है, आज तो साम्राज्यवाद, धनसत्तावाद, सैनिकसत्तावाद, गुरुडमवाद, एकमतवाद, बहुमतवाद, भाववाद, भेषवाद, इत्यादि भिन्न-भिन्न जीवित एकान्तवादसे अनेकान्तका संघर्षण है। इसी सघर्षणके लिए गाधीवाद, लेनिनवाद, मुसोलिनीवाद आदि कतिपय एकान्तपक्षीय नवीन मिथ्यात्व प्रबल वेगसे अपना चक्र चला रहे है। . . .

अत. इस युगके समन्तभद्र वा उनके अनुयायियोका कर्तव्यपथ तथा कर्म्म उक्त नव-जात मिथ्यात्वोको अनेकान्त अर्थात् नयमालामें गूँथकर प्रकट करना होगा, न कि भूतमें गडे हुए उन मिथ्यादर्शनोको कि जिनके लिए एक जैनाचार्यने कहा था कि "षड्दर्शन पशुग्रामको जैनवाटिकामें चराने ले जा रहा हूँ।" महावीरको आदर्श-अनेकान्त-व्यवहारी अनुभव करनेवालोका मुख्य कर्तव्य है कि वे कटिबद्ध होकर जीवोको और प्रथमतः भारतीयोको माया-महत्त्व-वादसे बचाकर यथार्थ मोक्षवाद तथा स्वराज्य का आग्रह-रहित उपदेश दें। और यह पुण्यकार्य उन्ही जीवोसे सम्पादित होगा, जिनका आत्म-शासन शुद्ध शासनशून्य वीतरागी हो चुका हो।

अन्तमें आपके प्रशस्त उद्योगमें सफलताकी याचना करता हुआ

आपका चिरमुमुक्षु बन्धु
अर्जुनलाल सेठी

अजमेर
२१-१-३०

और अगर मर जाइये तो....

महात्मा भगवानदीन

अर्जुनलाल सेठीको लोगोने भुला दिया। भुला देना हम वडा अच्छा काम समझते है। जो समाज अपने चाँदो, अपने सूर्यो-को भुलाना नही जानता वह जीना नही जानता। पर चाँद और सूरजको भुलानेके लिए वडी अक्ल चाहिए, वडी हिम्मत चाहिए, वडा त्याग चाहिए और मर मिटनेकी तैयारी चाहिए। तुलसीने हिन्दीमे रामायण लिखकर वाल्मीकिको भुलवा दिया, विनोवाने मराठीमे 'गीताई' नामसे गीताका अनुवाद करके मराठी जानकार जनताके दिलसे संस्कृतकी गीता भुलवा दी, यह कौन नही जानता कि युग-युगमे नये-नये आदमी पैदा होकर पुराने आदमियोको भुलाते जाते है। क्या प० जवाहरलालने प० मोती-लाल नेहरूको लोगोके दिलोसे नही भुलवा दिया ? पर इस तरह भुलवाने जानेसे बुजुर्गोकी आत्मा नयोको आशीर्वाद देती। पर समाजने अर्जुनलाल सेठीको इस तरहसे कहाँ भुलाया, अगर इस तरहसे भुलाया होता तो अर्जुनलाल सेठीका आत्मा आज हम सवको आशीर्वाद दे रहा होता।

अर्जुनलाल सेठी समाजकी ऐसी देन थे, जिनपर चाहे देशके थोड़े ही आदमियोको अभिमान हो, पर उस अभिमानके साथ इतनी तीव्रता रहती है कि जो उस अभिमानमे नही रहती जो करोडो आदमियोमे विखरा होता है। यह किसको पता है कि कितने ही देशके मशहूर घरानोमे जव अर्जुनलाल सेठीकी चर्चा चल पड़ती है तो सवके मुँहसे यही निकल पडता है कि उस-जैसे वातके पक्के आदमीको दुनिया वहुत कम पैदा करती है, और फिर सवके मुँहसे यही निकल पड़ता है कि होता कि हम भी अर्जुनलाल सेठी-जैसे वन सकते।

अर्जुनलाल सेठीको हम आदमी कहे, या देशकी आज़ादीका दीवाना कहें, हम अर्जुनलाल सेठीको हिन्दुस्तानी कहे, या आज़ादीके दीपकका परवाना कहे जो अपने २५ वर्षके इकलौते बेटेको मौतके बिस्तरपर छोडकर प० सुन्दरलालके एक मामूली तार पर दौडा हुआ बम्बई पहुँचता है, और बेटेके मर जानेके बाद भी उसे देशका काम छोडकर घर लौटनेकी जल्दी नही होती। कोई यह न समझे कि उसे घरसे मोह नही था, उसे बेटेसे प्यार नही था। वह इतना प्यारा था, और इतना मुहब्बती था कि उस-जैसे पतिके लिए पत्नियाँ तरस सकती है, उस-जैसे बापके लिए बेटे जानपर खेल सकते है, उस-जैसे दोस्तके लिए दोस्त खून-पसीना एक कर सकते है, उस-जैसे नेताके लिए अनुयायी सरके बल चल सकते है।

अर्जुनलाल सेठीने त्यागका व्रत नही लिया, त्याग किसीसे सीखा नही, किसी नेताके व्याख्यान सुनकर जोशमे आकर उसने त्यागको नही अपनाया, त्याग तो वह माँके पेटसे लाया था, त्याग तो उसकी जन्मघुट्टीमें मिला था, त्यागको तो उसने माँके स्तनसे पिया था, इसलिए त्याग करते हुए उसे त्यागका गीत नही गाना पडता था और त्यागी होते हुए दूसरो पर त्यागके घमण्डका रोब नही जमाना पडता था। त्यागीका बाना पहननेकी उसे जरूरत ही कहाँ थी ? इन पक्तियोके पढ़नेवालोमे हो सकता है अनेको ऐसे निकल आवे जो खुले नही तो मन ही मन यह कहने लगें कि रुपये तो हमसे भी मँगाये थे, पर यह वही बता सकते है जो उसके साथ रहे हो कि उसने उन रुपयोका क्या किया था। अर्जुनलाल सेठीके त्यागकी बातें ऐसी है, जिनको आज भी हम साफ-साफ कहनेके लिए तैयार नही। चूकि यह अच्छा ही है कि अभी वे कुछ दिनो और अजानकारीके गड्ढेमे पडे रहे, पर हम अपने पढनेवालोको किसी दूसरी तरहसे समझाये देते है—

कलकत्ताके मशहूर देशभक्त श्री श्यामसुन्दर चक्रवर्ती जो कि चित्तरजनदासजीकी टक्करके आदमी थे, उनसे मिलनेके लिए हम प० सुन्दरलालजीके साथ कलकत्ता पहुँचे। श्यामसुन्दर चक्रवर्ती 'सर्वेन्ट' नामका एक अंग्रेजी दैनिक निकालते थे। हम वही उनसे उनके दफ्तरमें

मिले। वे बडी मुहब्बतसे मिले और ऐसी खातिरदारी की मानो हम उनके माँ-जाये भाई हो। थोड़ी देर बाद वे हमे अपने घर ले गये और १६ वर्ष-की लडकीको दिखाया जो बीमारीसे काँटा हो गई थी और एकदम पीली पड़ी हुई थी। चक्रवर्ती और लडकीकी माँसे बातो-बातोमे यह भी पता चला कि उस लडकीके लिए दवा और दूधका भी ठिकाना नही, तब हमने सोचा कि कुछ रुपये चक्रवर्तीको दे देने चाहिएँ। हम घरसे 'सर्वेण्ट' के दफ्तर लौट ही रहे थे कि रास्तेमे एक आदमीने चक्रवर्तीके नामका ५०० रु० का चेक दिया, चक्रवर्तीजी हमारे साथ उस चेकको लेकर पासके बैंकमें पहुँचे और ५०० रु० लिये। दफ्तरमे आये। पाँच मिनिटमें पूरे पाँच सौ खतम हो गये। 'सर्वेण्ट' में काम करनेवालोकी २-३ महीनोकी तनख्वाह चढी हुई थी। चक्रवर्तीकी नजरमे पहले वह आदमी थे जो देशकी आजादीके काममें जुटे हुए थे न कि वह बीमार लड़की जो पलंगपर पडी थी। हमने जब यह देखा तो यही मुनासिब समझा कि चक्रवर्तीके हाथमे दिये हुए रुपये तो न कभी दवाका रूप ले सकेंगे और न कभी दूध बन सकेंगे। इससे यही ठीक होगा कि दवा खरीद कर दी जाय और दूधका कोई इन्तजाम कर दिया जाय। अगर कुछ देना ही है तो लड़की-की माँके हाथमे दिया जाय। हमने यह भी सोचा कि लड़कीकी माँ हिन्दू नारी है और हिन्दू पत्नी है, वह पति देवतासे कैसे छिपाव रख पायेगी और फिर उसके पास भी वह रुपया कैसे बच सकेगा। आखिर ऐसा ही इंतज़ाम करना पड़ा कि जिससे सब झंझटोंसे बचकर रुपये दूध और दवामे तबदील हो सके।

बस, इस ऊपरकी कथासे समझ लीजिए कि सेठीजीके हाथमें पहुँचा हुआ रुपया जाने कहाँ-कहाँ और किस तरह बिखर जाता था और किस तरह कम-ज्यादा देशकी आज़ादीके दीपकका तेल बनकर जल जाता था। सारी सस्थाएँ एक-एक आदमीके बलपर चलती है और वह आदमी इधर-उधरसे माँगकर ही रुपया लाता है, पर जिनपर वह रुपया खर्च करता है, उनपर सौ एहसान जमाता है। इतना ही नही, वह तो प्लेटफार्मसे चिल्ला-

चिल्लाकर यह भी कहता है कि यह मैं ही हूँ जो भूखोका पेट भर रहा हूँ। पर अर्जुनलाल सेठीने इस तरह भीख माँगकर पाये हुए रुपयेसे न कभी किसीपर एहसान जमाया और न कभी प्लेटफार्मसे तो क्या कोने-कतरेमे भी अपने दानकी कोई बात कही। वह सच्चे मानोमे त्यागी था। उसने अपने आपको कभी पैसेका मालिक नही समझा, पर समझा तो यह समझा कि वह पोस्टमैन है जो इधरसे रुपया लाता है और उधर दे देता है। यहाँ हो सकता है कि कोई व्यवहार-धर्मके रँगमें बुरी तरहसे रँगा हुआ यह सवाल उठा बैठे कि अर्जुनलाल सेठी भीख माँगकर ही नही पैसा इकट्ठा करते थे, बल्कि इस तरहसे भी रुपया जुटा लेते थे, जिसे वह जानते थे कि यह रुपया ठीक तरहसे हासिल नही किया गया। उसे हम क्या कहे, उसे दलीलोसे समझाना किसी तरहसे नही हो सकता। उसे तो हम यही कहेगे कि वह एक मर्तबा अपने भीतर आज़ादीकी आग सुलगाये और देखे कि उस आगकी जब लपटे उठती है तो वह क्या करता है और व्यवहार-धर्मको कैसे निभाता है। अर्जुनलाल सेठीको निश्चय और व्यवहार-धर्मके दोनो रूपोकी जानकारी बहुत काफी थी और इस नाते वह पण्डित नामसे पुकारे जाते थे। पर वह कोरे पण्डित नही थे। कोई दिन ऐसा नही जाता था जिस दिन वह रातको बैठकर अपने दिन भरके कामका अकेलेमें पर्यालोचन नही कर जाते थे। उन्होने तो कभी अपने मुँहसे नही कहा पर उनके पास रहकर हमारा यह अनुभव है कि उनका जीवन सचमुच जलमे कमलकी तरह था।

जयपुर कालेजसे बी० ए० करनेके बाद उनके लिए रियासतमें नौकरी का मार्ग खुला हुआ था, उनके साथियो और करीबी रिश्तेदारोमेंसे कई उस रास्तेको अपना चुके थे। पर ये कैसे अपनाते, इन्हें नौकरीसे क्या लेना था, इन्हे तो उसी राज्यके जेलखानेका मेहमान बनना था।

बी० ए० इन्होने फारसी लेकर किया था और सस्कृत घरपर सीखी थी। धर्मशिक्षाके मामलेमे वे चिमनलाल वक्ताको अपना गुरु मानते थे. हमने वक्ताजीके व्याख्यान सुने है। श्रोताओको समझानेकी शैली

उनकी बडी सीधी होती थी और इतनी मनलगती होती थी कि असली बात झट समझमे आ जाती थी। ऐसे गुरुके शिष्य अर्जुनलालजी अगर कुछ ऐसी बाते कह गये जो बहुतोको मन लगती नही जँचती तो उसमे उनका क्या दोष ! वे तो सचाईके साथ खोजमे लगे और जो हाथ आया कह गये।

वह भरी जवानीमे समाज-सेवाके मैदानमे कूद पडे और सबसे पहले उन्होने वह काम उठाया जिसकी समाजको सबसे ज्यादा जरूरत थी, यानी उन्होने एक शिक्षासमितिकी नीव डाली, उसीके मातहत जयपुर-में पाठशालाओका जाल बिछा दिया। अब्दुलगफूर नामके विद्यार्थीको लेकर समाजमे बडी खलबली मची, पर समाज पैदायशी त्यागी अर्जुन-लालका क्या बिगाड़ सकती थी और फिर उन्हे एक साथी घीसूलाल गोलेच्छा ऐसे मिल गये थे, जिसकी दोस्तीने सेठीजीके त्यागको और भी ज्यादा मजबूत कर दिया था।

यह शिक्षासमिति कुछ दिनोमे एक छोटी-मोटी यूनिवर्सिटीका रूप ले बैठी और दूर-दूरके विद्यार्थी उसकी परीक्षामे शामिल होने लगे।

शिक्षाकी सडक जिस रास्ते होकर गई है, उस रास्तेमे दासतासे मुठभेड हुए बगैर नही रहती और कैसी भी शिक्षासमिति क्यो न हो, दासता की बेडियोमे फँसकर वह सच्चे धर्मकी तालीम नही दे सकती। उसका सच्चा धर्म और स्वाधीनता एकार्थवाची शब्द है, इसलिए उसको राजसे टक्कर ही नही लेनी पड़ती, बल्कि उसे उखाड फेकनेकी तैयारी करनी होती है। सेठीजीकी शिक्षासमिति आखिर उस मजिलपर पहुँच तो गई और वे सरकारसे टक्कर ले कि इन्दौरमे श्री कल्याणमलविद्यालयके प्रधानाध्यापककी हैसियतसे गिरफ्तार कर लिये गये और कुछ दिनो जयपुर जेलमें और कुछ दिनो बैलोर जेलमें रहनेके बाद बाहर निकले कि जल्दी ही सन् २१ के आन्दोलनमें शामिल हुए। पैदायशी त्यागीके लिए और राह ही क्या थी।

हमसे उमरमे दो वर्ष बडे थे और हमारी उनसे जब जान-पहचान

हुई तब वह हमसे कई गुने ज्यादह धर्मके ज्ञाता थे और कहकर नहीं, तो मन ही मन हम उनको धर्मके मामलेमे गुरु ही मानते थे और हम उनकी बहुत-सी बातोकी नकल करनेकी कोशिश करते थे। जब वह शिक्षा-प्रचारक समितिके काममें लगे हुए थे, तब शिष्टाचारके वह आदर्श थे। गाली तो उनके मुँहपर फटकनेकी सोच ही नही सकती थी। मामूली पाजी या नालायक शब्द भी उनके मुँहसे निकलते हमने कभी नही सुना, वह अध्यापक भी थ पर विद्यार्थियोपर कभी नाराज नही होते थे। विद्यार्थियोसे 'आप' कहकर बोलना हमने उन्हीसे सीखा। यह तारीफ सुनकर सम्भव है हमारे पढनेवाले एकदम ऐंठ जायें, क्योकि उनमेसे बहुतोने उनको गाली देते सुना होगा, और बुरी-बुरी गालियाँ देते हुए भी सुना होगा। हम उनकी बातोको झुठलाना नही चाहते, पर हम तो अर्जुनलाल सेठीके बहुत पास रहे है और मुद्दतो रहे है। यह गाली देनेकी बला उनके पीछे बेलौर जेलसे लगी, जहाँ वे वर्षो राजकाजी कैदीकी हैसियतसे रहे है। वहाँ वे इतने सताये गये थे कि 'बेलौर' जेलसे निकलनेके बाद उनके बारेमें यह कहना कि वह अपने होशहवासमे थे ज़रा मुश्किल हो जाता है। जेल से छूटकर वह देहली गये तब हम वहाँ उनसे मिले थे। वे अनेको काम ऐसे करते थे कि जो इस शिष्टाचारसे जरा भी मेल नही खाते थे, जिसको हमने जयपुरमें देखा था। उदाहरणके लिए हर औरतके पाँव छूने और जगह बेजगह यह कह बैठना कि मैंने भगवान्‌की मूरतका मेहतरोंसे प्रक्षाल करवाया। उन दिनो सारी बाते कुछ इस तरहकी होती थी कि यह नही समझा जा सकता था कि उनको होश-हवास थी। धीरे-धीरे उन्होने अपनेपर काबू पाया, पर गालियोपर इस वजहसे पूरी-पूरा काबू नही पा सके कि काग्रेसकी राजकारी चपेटोने उनका मरते दमतक कभी पीछा न छोडा।

निश्चयके बलपर व्यवहारमे वह कभी-कभी इतने पीछे पड जाते थे और वह कभी-कभी इतने आगे बढ जाते थे कि आम आदमी उन दोनो-का मेल नही बिठा पाते थे। इस वास्ते कभी-कभी किसी-किसी समझ-दारके मुँहसे तग आकर यह निकल पड़ता था कि अर्जुनलाल योगभ्रष्ट

हो गया है। हम उनसे हर हालतमे मिलते रहे। उस हालतमे भी मिले जब उन्हे योगभ्रष्टकी पदवी मिली हुई थी, पर हमने तो उनमे कोई अन्तर पाया नही। उनकी आजादीकी लगन ज्योकी त्यो बनी हुई थी, उनका सर्वधर्मसमभाव ज्योका त्यो था और उनकी आजादीकी तडपमे कोई अन्तर नही आया।

हम तो उसीको धर्मकी चोटीपर पहुँचा हुआ मानते है जो जिस धर्ममे पैदा हुआ हो, उस धर्मके आम लोग उसे धर्मभ्रष्ट समझने लगे और उससे खूब घृणा करने लगे और बन सके तो उन्ही आम लोगोमेसे कोई ऐसा भी निकल आये जो उस धर्मभ्रष्टको मौतके घाट उतार दे और क्या गाँधीजी कुछकी नज़रमे धर्मभ्रष्ट नही थे और क्या उन्हे धर्मभ्रष्ट होनेकी सज़ा नही मिली। इस लिहाजसे तो सेठीजी अच्छे ही रहे। फिर वे धर्मभ्रष्ट तो रहे पर सज़ासे बच गये।

अर्जुनलाल सेठीका जीवन सचमुच जीवन है। यह भी कोई जीवन है कि बनी-बनाई पक्की सड़को पर दौडे हुए चले जाये, सेठीजीका जीवन कभी पहाडीकी चोटियोको लाँघना और कभी चक्करदार रास्तोंमे घूमना, घने जगलमे पगडडीकी परवाह किये बिना जिधर चाहे उधर चल पड़ना। ऐसा करनेके लिए नामबरीको अपने पाँवोके नीचे कुचलनेके लिए जितनी हिम्मत चाहिए, उतनी उनमे थी और यही तो एक ऐसी चीज थी कि जिसकी वजहसे हमको सेठीजीके जीवनसे स्पर्द्धा होती है।

तो क्या सेठीजीमे कोई कमी या बुराई नही थी, हाँ कमियाँ और बेहद बुराइयाँ थी। अगर गुलाबके फूलकी टेक, गुलाबकी झाडीके काँटे, गुलाबकी बुराइयाँ है तो वैसी उनमे अनगिनत बुराइयाँ थी। और गुलाबके फूलकी झाडीके वह सूखे पत्ते जो पीले पड जाते है, कमियाँ है तो उनमे अनेको कमियाँ थी। अगर गुलाबकी टेढी-मेढी बेढगी, बदसूरत जड़ें गुलाबकी कमियाँ है तो ये सब उनमे थी। पर हम करे तो क्या करें, हमारी नज़र तो गुलाबपर है और हम उस गुलाबपर इतने मस्त है कि उसे तोड़ते हुए हमारे सैकडो काँटे भी लग जाये तो भी अपनी मस्तीमे उस

ओर हमारा ध्यान ही नही जाता। हम सेठीजीकी उस लगनको देखें जिसको लेकर वह पहले पहल धर्मके मैदानमे कूदे, फिर समाजके मैदानमें आये और फिर देशके मैदानमे आये, या हम यह देखे कि वे क्या खाना खाते थे, किस तरहकी टोपी लगाते थे या वे उस मकानमें सोते थे, जिसका पश्चिमकी तरफ दरवाजा था, उस मकानमे रहते थे, जिसका पूरबकी तरफ दरवाजा था, जो कांटोका ही रोना रोते है वो न फूल पाना चाहते है और न फूल पानेकी इच्छा रखते है। हम इसे मूर्खता ही समझते है कि फूल सूखकर जब उसकी पखुडियाँ गिरे, तब इस आधारपर फूलके बारेमे हम अपनी राय बतायें कि उसकी पखुडियाँ जगलमें गिरी थी, या किसी साधुकी कुटीमे गिरी थी, या मन्दिरमे किसी देवताकी वेदीपर गिरी थी, या राजाके महलमें गिरी थी, आदमीके मरनेके बाद उस लाशको चील, गृद्ध खायें तो वही बात, जलाई जाय तो वही बात, दफनाई जाय तो वही बात और बहाई जाय तो वही बात।

एक शोर है कि सेठीजी दफनाये गये और साथमे यह भी शोर है कि उनके दफनाये जानेकी जगहका ठीक पता नही है। अगर यह पिछली बात ठीक है तो बडे कामकी बात है क्योकि इस तरह मरनेके बाद नाम न छोडकर दफनाये जानेसे किसी दिन तो उन हड्डियोपर हल चलेगा और वहां खेती होगी और उससे जो दाने उगेगे उसे जो खायेगा उसमें देश-भक्ति आये बगैर न रहेगी। सेठीजीको जो मौत मिली, वैसी मौतके लिए दिल्लीके मशहूर कवि गालिब तक तरसते गये—

"रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहाँ कोई न हो।
हमसुख़न कोई न हो, और हमज़ुबां कोई न हो॥
बेदरोदीवार-सा इक घर बनाना चाहिए।
कोई हमसाया न हो और पासबां कोई न हो॥
पडिये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार।
और अगर मर जाइये तो नौहाख़्वां कोई न हो॥"

बैरिस्टर
चम्पतराय

श्री सुमेरचन्द एडवोकेट

गोयलीय

बाबू सुमेरचन्दजीके निधन-समाचार जिस मनहूस घड़ीमें मुझे सुननेको मिले, फिर ऐसी कुघडी किसीको नसीब न हो। यह अनहोनी बात जब उनके सम्बन्धीने मुझे बताई तो मानो शरीरको लकवा मार गया। मैं उसकी ओर हतबुद्धि बना-सा देखता रहा। समझमें नही आया कि मैं उसका मुँह नोच लूं या अपना सिर पीट लूं। रुलाईसे गला रुँध रहा था, मगर घरवालोके भयसे खुलकर रो भी न सका। रातको कई बार नीद उचाट हुई, क्या बाबू सुमेरचन्दजी चले गये? दिल इस सत्य बातको निगलनेके लिए तैयार नही होता था। मगर रह-रहकर कोई सुइयाँ-सी चुभो रहा था। और दिमागमें यह फितूर बढता जा रहा था कि बाबू सुमेरचन्दजी अब देखनेको नही मिलेगे।

खंडवा अधिवेशनके बाद ८ मई १९३८ को तो मुज़फ्फरनगरकी मीटिंगमें वह आये ही थे। काश! उस समय मालूम होता तो जी भरकर उन्हे देख लेता। मुझे क्या मालूम था कि मीटिंगके बहाने उनके दर्शनार्थ कोई आन्तरिक शक्ति मुजफ्फरनगर खीचे ले जा रही है। मुज़फ्फरनगरकी मीटिंगका सँभालना उन्हीका काम था। कन्धेपर हाथ रखकर जो-जो बाते सुझाईं, वह सब आज रुलाईका सामान बन रही है।

मै कहता हूँ यदि उन्हे इस ससारसे जाना ही था तो जैसे दुनिया जाती है, वैसे ही वे भी चले जाते। व्यर्थमें यह प्रीति क्यो बढानी थी। समाजने उनका दामन इसलिए नही पकड़ा था कि मँझधारमें धोखा दिया जायगा। किसने कहा था कि वह इस झगडालू समाजको प्रीतिकी रीति बतायें, और जब प्रीतिकी रीति बताई ही थी तो कुछ दिन स्वय भी तो निभाई होती।

सहारनपुर-जैसी ऊसर ज़मीनमे किस शानसे और किस कौशलसे परिषद्का अधिवेशन कराकर सुधारका बीजारोपण किया; और रुड़कीमे परिषद्के छठे अधिवेशनके सभापति होकर क्या-क्या अलौकिक कार्य किये? मै यह कुछ नही जानता हूँ, मै पूछता हूँ परिषद्के बारहवे अधिवेशनके सभापति बनकर वह देहलीमे क्या इसीलिए आये थे कि इतना शीघ्र हमे यह दुर्दिन देखना नसीब होगा। यदि ऐसी बात थी तो क्यो वे सैकडों बार महगाँव-काडके सम्बन्धमें देहली आये? क्यो वह सतना, खडवा, लाहौर, फीरोजपुर, रोहतक, मुजफ्फरनगर, मेरठ, ग्वालियर आदि स्थानोमें परिषद्के लिए मारे-मारे फिरे? यदि परिषद् उन्हे इस तरह छोडनी थी तो अच्छा यही था कि वह परिषद्का नाम भी न लेते और इसे उसी तरह मृतक-तुल्य पडी रहने देते। क्यों उन्होने देहली अधिवेशनमें आकर परिषद्मे नवजीवन डाला, और क्यो सतना और खंडवामें पहुँचकर परिषद्की आवरूमें चार चाँद लगाये? बाबू सुमेरचन्द अब नही है, वर्ना सब कुछ मै उनका दामन पकडकर पूछता।

मैने उन्हे सबसे पहली बार सन् ३५ मे जब देखा था, तब वह देहली

में परिषद्के बारहवें अधिवेशनके सभापति होकर आये थे। बा० सुमेरचन्दजी जितने बड़े आदमी थे, उतनी ही शानका देहलीवालोंने उनका स्वागत किया था। देव-दुर्लभ जुलूस निकाला था। देहलीकी जनतामें परिषद्-विरोधियोंने भ्रम फैलाया हुआ था, किन्तु यह सब बा० सुमेरचन्दजी के व्यक्तित्वका प्रभाव था, जो देहली-जैसे स्थानकी धार्मिक जनता, परिषद्की अनुयायी हो गई, और परिषद्को वह अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई जो इससे पूर्व परिषद्को तथा अन्य जैन-सभाओंको नसीब नहीं हुई थी।

खडवा अधिवेशनमें जब विषय-निर्वाचनी समितिमें मन्दिर-प्रवेश प्रस्तावपर बहस करते हुए हम मनुष्यत्व खो बैठे थे, तब बा० सुमेरचन्दजी किस शानसे मुस्कराते हुए उठे, और किस कौशलसे प्रस्तावका संशोधन करके परिषद्को मरनेसे बचा लिया था। वह सब आज आँखोंमें घूम रहा है। बा० सुमेरचन्दजीने कितनी आरजू-मिन्नत करके परिषद्के आगामी अधिवेशनका निमन्त्रण स्वीकार कराया था। उनकी आँखोंमें कौन-सा जादू था, उनकी वाणीमें ऐसी क्या शक्ति थी कि अन्य सब स्थानोंके निमन्त्रण वापिस ले लिये गये, और देहली प्रान्तका ही निमन्त्रण सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

बाबू सुमेरचन्दजी बातके धनी, समयके पाबन्द धर्मनिष्ठ पुरुष थे। जो बात कहते थे, तोलकर कहते थे। क्या मजाल, उनकी बात काटी जाय, मीटिंगमें बैठे हुए सबकी बात बच्चोंकी तरह चुपचाप सुनते, बच्चोंकी तरह हँसते, और जब वह बोलते तो बहुत थोडा बोलते। मगर जो बोलते वह सब सूत्ररूप, बा-मायने। हम कहते—"यह बात आपने पहिले ही क्यों न कह दी, व्यर्थ हमें बकवादका मौका दिया।" वह खिलखिलाकर हँस पडते और हम उनकी इस सरलताकी ओर नतमस्तक हो जाते। बा० सुमेरचन्दजी सहारनपुरके सबसे बड़े वकील थे। उन्हें लखनऊ, इलाहाबाद, आगरा, कानपुर-जैसे नगरोंमें वकालतके लिए जाना पडता था। उनके कानूनी ज्ञानका लोहा प्रतिद्वन्द्वी भी मानते थे। मैंने कभी आपकी त्यौरियोंपर बल पड़ते हुए नहीं देखा। आपत्तिके समयमें भी उन्होंने

साहसको नही खोया। ऐन मौकेपर जिन सहयोगियोने आपको धोका दिया, कभी उनके प्रति आपके हृदयमें अनादरने घर नही किया। उल्टा लोगोंके आगे उनकी बेबसीकी वकालत की और उनके अन्य उत्तम गुणोंकी प्रशंसा करके जनताकी दृष्टिमें आदरणीय ही बनाये रक्खा।

बा० सुमेरचन्दजीको अपनी वकालतसे साँस लेनेको फुरसत न थी। मगर परिषद्के लिए कितना समय देते थे, यह परिषद्वाले जानते है। महमाँनवाज ऐसे कि घरपर कैसा ही साधारण-से-साधारण महमान आये तो उनके पाँवमें अपनी आँखें बिछा देते थे। अभिमान तो नामको भी न था। शायद ही उन्होंने अपनी उम्रमें किसी नौकरको अपशब्द कहे हों।

देहली अधिवेशनमें सभापति-पदसे आपने कहा था—"सज्जनो, आज हम अपनेमें एक ऐसे सज्जनको नही देख रहे है जिसने अपनी सेवाओ-से हमारी समाजको सदैवके लिए ऋणी बना दिया है। इनका शुभ नाम श्रीमान् रायबहादुर साहब जुगमन्दरदासजी है। आज हमारे बीच आप नही है, अब तो स्वर्गीय रत्न बन चुके है। आपकी सेवाओका पूर्ण विवरण तो लिखा जाना कठिन है। मै तो आपकी थोड़ी-सी भी कृतियोका उल्लेख नही कर सका हूँ। हाँ! इतना तो अवश्य कह सकता हूँ कि आप जैन-समाजके एक असाधारण महापुरुष थे। आपके वियोगसे जैनसमाजकी जो क्षति हुई है, निकट भविष्यमें उसकी पूर्ति नही दीखती। आपकी उदार सेवाओके लिए समाजका मस्तक आपके आगे झुका हुआ है। क्या मै यह आशा कर सकता हूँ कि उदार जैन-समाज आपके उचित स्मारककी स्थापनापर विचार करेगी।"

मै आज इतने दिनके बाद उक्त शब्दोकी कीमत समझ पाया हूँ। यह उनका संकेत किसी अनन्तकी ओर था। खंडवाकी स्वागतकारिणीने जुगमन्दर-सभा-स्थान बनाकर आपके शब्दोको मान दिया था। क्या मैं आशा करूँ कि बा० सुमेरचन्दजीकी पवित्र स्मृतिमे जैन-समाज कोई अलग स्मारकका आयोजन करेगी। बा० सुमेरचन्दजी कहनेको अब

इस नश्वर शरीरमें हमारे साथ नहीं है, मगर उनकी आत्मा, ऐसा मालूम होता है कि हमारे चारो तरफ मँडरा रही है। जिस दस्सापूजा-प्रक्षालकी अभिलाषाको लेकर वह खडवेसे आये थे और आते ही जिसमे वह जुट गये थे, क्या वह कार्य पूरा करके हम उनकी इस अभिलाषाको पूर्ण करके उनकी आत्माको शान्ति प्रदान कर सकेंगे ?[१]

आ अन्दलीब मिलके करें आहो जारियां।
तू हाय गुल पुकार पुकारूँ मैं हाय दिल॥

—जैनसन्देश, आगरा
१९३८

---

१ यह मेरा लिखा संस्मरण जैन सन्देशमें एक नामके लोभी सज्जनने अपने नामसे छपवा दिया था। —गोयलीय

जन्म— नसीराबाद, १८७४ ई०

स्वर्गवास— लखनऊ, १७ सितम्बर १९५१ ई०

आत्म-कथा

[वकील साहबने अपनी जीवनी स्वयं लिखकर एक बहुत बड़ी आवश्यकताकी पूर्ति की है। यह जीवनी 'अज्ञात जीवन' शीर्षकसे २०×२६ आकारके २४० पृष्ठोंमें मुद्रित है। उसीपरसे हम यह संक्षिप्त सार दे रहे हैं।]

जाति-मद, कुल-मदकी भावना हेय है, किन्तु अपने पूर्वजोंकी गौरवगाथा उत्साहवर्द्धक तथा शक्तिप्रद होती है। हमलोग क्षत्रियकुलोत्पन्न, राजा अग्रकी सतान, वीसा अग्रवाल, जिन्दल गोत्रीय हैं। रुईका व्यापार करनेसे रुईवाले सेठ कहलाते थे। व्यापार करते-करते वैश्य कहलाने लगे। इधर चार पीढियोसे अंग्रेजी सरकारकी चाकरी करनेसे वैश्य पदसे भी गिर गये और सेठके स्थानमे बाबू कहलाने लगे। मै तो वकालतका व्यवसाय और सस्कृत भाषाका अभ्यास करनेसे अपने-को पण्डित कहलानेका अधिकारी समझता हूँ। मेरे चारो पुत्रोने भी वकालतकी उपाधि प्राप्त कर ली है। मेरी छोटी बेटी शान्ति और पोती शारदा दोनोने सस्कृत भाषामे एम० ए० की उपाधि प्राप्त कर ली है। मेरी कनिष्ठ पुत्र-वधू एम० ए० (Previous) पास है। मेरी बडी बेटीकी बेटी प्रेमलताने लन्दन विश्वविद्यालयसे बी० ए० (Hons) डिगरी प्राप्त की है। कर्मणा वर्णव्यवस्था सिद्धान्तानुसार हम लोग किसी प्रकारसे भी बनिये नही है।

हमारे पुरखा खास शहर दिल्लीके रहनेवाले थे। मेरे परपितामह सेठ चैनसुखदासजी नसीराबाद जा बसे थे। मेरे पितामह बनारसीदासजी-का जन्म वही हुआ था। वही वे उच्च पदाधिकारी हुए और वही ३५ वर्षकी भरी जवानीमें १९५८ ई० मे उनका शरीरान्त हुआ।

मेरे बाबा फ़ारसी विद्यामे निपुण और पारगत थे। मेरे पिताजी भी फ़ारसी भाषामे धाराप्रवाह नि.संकोच बात कर लेते थे, और मैंने भी फ़ारसीकी ऊँचे दरजेकी पुस्तकें पढ़ी हैं।

१८५७ के गदरसे कुछ पहिलेसे दादाजी, पिताजी और बुआजी दिल्लीमे रह रहे थे। बाबाजी अकेले ही नसीराबादमे थे। गदर शान्त हो जानेपर उन्होंने दो आदमी लेनेके लिए दिल्ली भेजे। लेकिन उनमेसे एक आदमी रास्तेमे मार डाला गया और दूसरा आदमी उन सबको लेकर बैलगाडीसे नसीराबादको रवाना हुआ। रास्तेमे एक मुसलमान सिपाही मिल गया। वह फ़रुक्कनगरका रहनेवाला था, और यह जानकर कि दादीजी फ़रुक्कनगरकी बेटी हैं, वह गाड़ीके साथ-साथ पैदल चलने लगा। आगे चलकर कुछ डाकुओंने गाड़ी घेर ली। सिपाहीने ललकारा—"जब तक मैं जिन्दा हूँ गाड़ीपर हाथ न डालना।" उसने डाकुओंसे बातचीत की और उनसे कहा कि यह मेरे गाँवकी बेटी है। मै थक गया हूँ। तुम लोग ऐसा बन्दोबस्त कर दो कि यह अपनी सुसराल नसीराबाद सही-सलामत पहुँच जाय।" और दादीजी सकुशल नसीराबाद पहुँचा दी गईं।

बाबाजीके देहान्तके बाद मेरी दादी, पिताजी और माताजीको लेकर दिल्ली आ गई थीं। पिताजीका प्रारम्भिक शिक्षण उस जमानेके रिवाजके अनुसार फ़ारसीमे हुआ। दिल्लीमे आकर उन्होने घरपर अंग्रेजी पढी। फिर स्कूलमे भर्ती हो गये। १८६५ ई० मे वे एण्ट्रेंस परीक्षामे उत्तीर्ण हुए और जुलाई १८६५ मे गुरुसराय तहसील (जिला झाँसी) मे अंग्रेजी भाषाके अध्यापक हुए। फिर अगस्त १८६७ मे शिमले में ४० रु० मासिकपर सहायक अध्यापक नियत हुए, एक वर्ष बाद ५ रु० वेतन-वृद्धि हुई।

शिमलेमे स्कूलके अतिरिक्त पिताजी सेनाके अंग्रेजोको उर्दूका अध्ययन भी कराया करते थे और २० रु० मासिक प्रति घण्टेके हिसाबसे वेतन लेते थे। १८७७ ई० में उन्होंने वकालतकी परीक्षा दी, किन्तु

पास नही हुए।

१८७७ ई० मे ३०-३५ वर्ष पीछे दिल्लीके बाजारोमे रथोत्सव करनेका सौभाग्य जैनियोको प्राप्त हुआ। अधिकतर विघ्नबाधा हमारे अग्रवाल वैष्णव भाइयोने उपस्थित की थी। उनका सरदार रम्मीमल चौधरी था। दिल्लीके डिप्टी कमिश्नर कर्नल डेविसने जैनियोकी विशेष सहायता की और अन्तत. गवर्नर सर लेपिल ग्रिफनसे स्वीकृति प्राप्त हुई। इस कार्यमें पिताजीने अग्रभाग लिया था। रथोत्सवके शान्ति-पूर्वक प्रबन्धकी जिम्मेदारी ११ जैनियो और ११ वैष्णवोपर रक्खी गई थी। पिताजी उन ११ व्यक्तियोमे थे। प्रबन्धके लिए करनाल, पानीपत, अम्बाला और रोहतकसे भी पुलिस बुलाई गई थी। घण्टो पहलेसे रथोत्सवकी सडकोपर अन्य सडकोके मिलानके मार्ग बन्द कर दिये गये थे। कोतवालीके सामने रेलसे उतरे हुए सैकडो जैनी पुलिसकी रोकसे बिह्वल हो रहे थे। पिताजी यह देखकर कर्नेल डेविसके पास गये। उन्होने पिताजीकी जिम्मेदारीपर नाका खोल देनेकी परवानगी दे दी। उत्सव सानन्द सम्पन्न हुआ।

मेरा जन्म नसीराबादमें वैसाख कृष्ण ४, सवत् १९३१ सन् १८७४ को सूर्योदय समय हुआ। मेरे जन्मसे पहले ४ भाई-बहन गुजर चुके थे। इस कारण मेरे नानाजीके आग्रहसे मेरा जन्म उन्हींके घर हुआ। छठीके कुछ दिन पीछे ही मेरे दोनो कान छेदकर बाली पहना दी गई थी, दोनो हाथोमें कडे भी।

उन दिनो किरासन तेलका किसीने नाम भी नही सुना था। सरसो-के तेलसे दीपकका प्रकाश होता था। सोते समय दीपक बुझा दिया जाता था। एक रात सोते समय मेरे हाथका कडा कानकी बालीमे अटक गया। ज्यो-ज्यो मै हाथ खीचता था, कान बालीसे कटता जाता था और मै जोर-जोरसे चिल्लाता जाता था। दीपक जलाया गया,तो पता चला कि कान कट गया है और खून बह रहा है। बायें कानकी लौ अब भी इतनी कटी हुई है कि उसमें सुरमा डालनेकी सलाई आरपार जा सकती है। इस

घटनाके कारण नानाजीने मेरा नाम बूची (कनकटा) रख दिया।

करीब दो वर्षकी उमरमें पिताजीके साथ मै दिल्ली चला आया। उन दिनों चेचकका ज़ोर था। मुझे भी चेचक निकली। शुभ कर्मोदयसे बच गया। चेहरेपर चेचकके दाग अबतक मौजूद है। चेहरे और बदनका रग भी मैला हो गया, गौरापन जाता रहा। अत मेरा नाम कल्लू पड़ गया। मिडिल परीक्षाके प्रमाणपत्रमे भी मेरा नाम कल्लूमल लिखा हुआ है। १८८७ मे नवी कक्षामें दाखिल कराते समय मेरा नाम अजितप्रसाद लिखवाया गया।

मेरी माताजीका १८८० में क्षयरोगसे शरीरान्त हो गया। रातभर पिताजी मुझे छातीसे लगाये नीचे बैठकमें लेटे रहे और दादी आदि रोती-पीटती रही।

सालभरके बाद ही दादीजीके विशेष आग्रहपर पिताजीका पुनर्विवाह हो गया। विमाता मूर्ख, अनपढ, सकीर्णहृदया थी। पिताजीका प्रेम उसने मुझसे बटवा लिया। एक बार क़ुतुब मीनार देखने गये। पिताजी, भाभी (विमाता) को पीठपर चढाके ऊपर ले गये। मै रोता हुआ साथ गया कि मै भी पढी चढूंगा, भाभीको उतार दो। पिताजीने थोडी दूर मुझे भी चढा लिया और फिर भाभीको चढा लिया। मुझे इससे दुख हुआ।

फिर पिताजीकी बदली रुड़की हो गई। रातको रोज मै पिताजी से चिमटकर सोता। लेकिन आँख लगते ही मेरी जगह भाभी ले लेती। दिनकी दुपहरीमे भी इसी बातपर तकरार होती। कुछ अरसे बाद दादीजी दिल्लीसे आ गईं, तब मुझे माँका प्यार नसीब हुआ, किन्तु दादीके साथ भी भाभीका वर्ताव ठीक नही रहता था। किसी-न-किसी बातपर आठवें-दसवें दिन दादी-पोते रो लेते थे। दादीजीको मरते दमतक चैन न मिला।

बचपनमे दादीजीके साथ रहनेसे मेरे जीवनपर धार्मिक क्रियाओका गहरा प्रभाव पडा, और उस प्रभावसे मुझे अत्यन्त लाभ हुआ। मै उनके

साथ हर रोज दर्शन करने जाता था।

सन् १८९३ मे बी० ए० की परीक्षामे भी मै फर्स्ट आया। मुझे कर्निंग कॉलेज गोल्ड मेडिल मिला। मेरा नाम १८९३ की स्नातक-सूचीमे स्वर्णाक्षरोमे कॉलेज हालमें लिखा गया था। उन दिनो आई० सी० एस० की परीक्षा भारतमे नही होती थी। पिताजीके पास इतना धन नही था कि वे मुझे लन्दन भेज सकते। उनकी अनुमतिसे बम्बई गया और सेठ माणिकचन्दजीसे मिला, किन्तु छात्रवृत्ति प्राप्त न हो सकी। लाचार भारतमें ही रहकर १८९४ में एल्-एल० बी० और १८९५ में एम० ए० की परीक्षा पास की। मुझे थियेटर देखनेका व्यसन था, किन्तु परीक्षाकी तैयारीमे न देखनेका दृढ सकल्प कर लिया था, और उसे अन्त तक निभाया।

अप्रैल १८९५ में ५०० रु० के स्टाम्पपर मैंने हाईकोर्ट अलाहाबादसे वकालत करनेकी अनुमति प्राप्त कर ली। लेकिन मुझे वहाँ एक भी मुकदमा नही मिला। कुछ दिनो बाद लखनऊ चला आया, और १० रु० किरायेके मकानमें रहने लगा। एक मुशी भी रख लिया। यहाँ मुझे काम मिलने लगा। और ३-४ वर्षके बाद कचहरीमें नाम फैलने लगा।

१९०१ में मैंने रायबरेलीकी मुन्सिफीका पद ग्रहण किया। १९०९ ई० में ६२ वर्षकी उम्रमें मेरे घुटनेपर सिर रखे हुए पिताजीका प्राणान्त हो गया। रायबरेलीमें तीन माह मुन्सिफी करनेके बाद मै लखनऊ वापिस आ गया, और प्रयत्न करनेपर मै सरकारी वकील हो गया। १९१६ में १५ बरस तक सरकारी वकालत करते-करते मै उकता गया। सरकारी वकीलका वेतन उस समय २५ रु० प्रतिदिन था। सरकारी वकालतके १६ बरसके समयमें मेरा सतत उद्देश्य यही रहा कि मै अन्याय या अत्याचारका निमित्त कारण न हो जाऊँ। मैंने कभी गवाहोको नही सिखाया, न ऐसी गवाहीपर जोर दिया जो मेरी समझमें झूठ थी। सरकारी वकीलका कर्तव्य है कि प्रजाके साथ न्यायपूर्वक व्यवहारमें सहायक हो। वह पुलिसका वकील नही है, जैसा लोग साधारणतया समझते

है। मेरा यह भी प्रयत्न रहा कि दैनिक फीस २५ रु० के बजाय ५० रु० कर दी जाय, किन्तु असफल रहा। आखिर असन्तुष्ट होकर १९१६ ई० में मैंने त्यागपत्र दे दिया।

सन् १९१० में मै आल इण्डिया जैन एसोसियेशनके वार्षिक अधिवेशनका अध्यक्ष निर्वाचित होकर जयपुर गया। पं० अर्जुनलाल सेठी बी० ए० ने 'जैन-शिक्षण-समिति' स्थापित कर रखी थी। एक आदर्श सस्था थी। श्री दयाचन्द गोयलीय छात्रालयके प्रवन्धक और समिति-में अध्यापक भी थे। श्री गेन्दनलाल सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट वोर्ड रुड़की तथा भगवानदीनजी असिस्टेण्ट स्टेशन मास्टर, दिल्ली-निवासी जगन्नाथ जौहरी, भाई मोतीलाल गर्गसे भी वहाँ मिलना हुआ और सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि एक ब्रह्मचर्य्याश्रमकी स्थापना की जाय। परिणामस्वरूप पहली मई १९११, अक्षयतृतीयाके दिन हस्तिनागपुरमें श्री ऐलक पन्नालालजीके आशीर्वादपूर्वक "श्री ऋषभब्रह्मचर्य्याश्रम"की स्थापना हुई। अक्षयतृतीयाकी पुण्यतिथिमें राजा श्रेयांसने हस्तिनागपुरमें एक वर्षके उपवासके पश्चात् भगवान् ऋषभदेवको इक्षुरसका आहार दिया था।

भगवानदीनजीने नौकरीसे त्यागपत्र देकर २६ वर्षकी आयुमें ही आजन्म ब्रह्मचर्य्यव्रत ले लिया। तीन वरसके इकलौते वेटेको आश्रम-का ब्रह्मचारी वना दिया। उनकी पत्नी वम्बई श्राविकाश्रममें चली गईं। अधिष्ठाता पदका भार भगवानदीनजीने स्वीकार किया। मन्त्रि-पद मुझे दिया गया। हस्तिनागपुर मेरठसे २६ मील दूर है। १९ मील घोडागाड़ीका रास्ता था, शेष ७ मील वैलगाडीसे या पैदल जाना पड़ता था। तीन दिनकी छुट्टीमें मै भी चला जाया करता था।

सरकार उन दिनो ऐसी सस्थाओको सन्देहकी दृष्टिसे देखती थी। जहाँतक मुझे मालूम हुआ एक पुलिसका जासूस आश्रममें अध्यापकके रूपसे लगा हुआ था।

जैन-समाजके पडिताई पेशेवर और धनिकवर्गको भी आश्रमके कार्य्यमें पूर्ण श्रद्धा नही थी। परिणाम यह हुआ कि ४ वरस पीछे मुझको

और भगवानदीनजीको त्याग-पत्र देना पडा और एक-एक करके गेन्दन-लालजी, ब्र० सीतलप्रसादजी, भाई मोतीलालजी, जौहरी जगन्नाथजी, बाबू सूरजभानजी आदि सभी आश्रमसे हट गये। नामको वह आश्रम अब भी मथुरानगरके चौरासी स्थानपर चल रहा है, किन्तु जो बात सोची थी, वह असम्भव हो गई।

दृष्टान्तरूप इतना लिखना अनुचित न होगा कि जब मैंने त्यागपत्र दिया, उस समय ६० ब्रह्मचारी आश्रममें थे। शिक्षणका प्रभाव उनपर इतना था कि एक दिन सबके साथ मै भोजन करने बैठा। सब ब्रह्मचारी साधारणतया भोजन कर चुके, मुझसे खाया ही नही गया। तब भगवान-दीनजीने नमक दाल-शाकमें डाल दिया। फिर तो मैंने भी भोजन कर लिया। भगवानदीनजीने बतलाया कि बालकोके मनमें यह दृढ श्रद्धा है कि भोजन स्वादके लिए नही, बल्कि स्वास्थ्यके लिए किया जाता है, जो भोजन अधि-ष्ठाताजी देंगे, अवश्य स्वास्थ्यप्रद होगा।

समस्त विद्यार्थी अपने जूठे बर्तन स्वय माँजते, स्वय कुएँसे पानी भरते, अपने वस्त्र स्वय धोते थे, और आज्ञाकारी इतने थे कि भगवान-दीनजीका इशारा पाते ही एक लडका कुएँमें कूद गया, रस्सेसे उसे तुरन्त बाहर निकाला गया। एक बालक उस बियाबान जगलमें ५-६ मीलकी दूरीसे आदेश मिलनेपर अकेला ही आश्रम पहुँच गया। बालक निर्भीक, विनयी और आज्ञाकारी थे।

१९१० ई० में लखनऊमें मकान बनवाया। अजिताश्रम उसका नाम रखा गया। १९११ में गृहप्रवेशके अवसरपर भारत-जैन-महामण्डल-की प्रबन्धकारिणीका अधिवेशन हुआ। फिर १९१६ में महामण्डल और जीवदया सभाके विशाल सम्मिलित अधिवेशन हुए। अजिताश्रमका सभामण्डप सजावटमें लखनऊभरमें सर्वोत्तम था। सभाध्यक्ष प्रख्यात पत्रसम्पादक मि० बी० जी० होर्नीमैन थे। वक्ताओमें महात्मा गाधी भी थे। अधिवेशनमें उपस्थिति इतनी अधिक थी कि छतो और वृक्षोपर भी लोग चढे हुए थे। सामनेकी सडक रुक गई थी, खडे रहनेको भी कही

जगह न थी।

श्री सम्मेदशिखर, गोम्मटेश्वर, गिरनारजी आदि तीर्थोंकी भक्ति-पूर्वक वन्दनाएँ की। १९१० में गोम्मटेश्वर स्वामीका महामस्तकाभिषेक था। उस ही अवसरपर महासभाके अधिवेशनका भी आयोजन किया गया था। प० अर्जुनलाल सेठी, महात्मा भगवानदीन भी पधारे थे। एक रोज महात्माजीने एक चट्टानपर अर्घ रख दिया, दूसरे दिन देखा कि वहाँपर सामग्रीका ढेर चढा हुआ है। वह स्थान पूज्य मान लिया गया। जनता अन्धश्रद्धासे चलती है, विचार-विवेकसे काम नही लेती।

एक दिन यह चर्चा चली कि यात्राके स्मारक रूप कुछ नियम सबको लेना चाहिए। भगवानदीनजीने कहा कि सब लोग गालीका त्याग कर चलें, गालीका प्रयोग बुरा है। लेकिन इस कुटेवका ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि किसीकी भी हिम्मत नही हुई कि गालीका यावज्जीवन त्याग कर दे। अन्तत. सबने यह नियम लिया कि जहाँतक बनेगा, गालीका प्रयोग न करेंगे। यदि करे तो प्रायश्चित्तस्वरूप दण्ड लेंगे। उस नियमका परि-णाम अच्छा हुआ। जब कभी ऐसा अशुभ अवसर आता है तो मै उस दिन-की वार्ताको याद कर लेता हूँ और कषायावेगको रोक लेता हूँ। परि-णामशुद्धिरूप त्याग, खाने-पीनेकी वस्तु-त्यागसे कई गुना अच्छा और पुण्याश्रवका कारण है, किन्तु ऐसी प्रथा चल पड़ी है कि त्यागीवर्ग तथा साधुवर्ग गृहस्थोसे खाने-पीनेकी वस्तुओका ही त्याग कराते है। यदि कषायका त्याग कराएँ तो जैनसमाज और जैनधर्मका महत्त्व संसारमें फैल जाय, महती धर्मप्रभावना हो।

गिरनारजीसे हम लोग बम्बई आये, रास्तेमे गुरुवर्य्य वादिगज-केसरी पं० गोपालदासजी बरैया, प० माणिकचन्द कौन्देय, खूबचन्द, देवकीनन्दन, बंशीधर (शोलापुरवाले), मक्खनलालजीका भी साथ हो गया था। हमारे स्वागतके लिए स्टेशनपर बम्बईके प्राय सभी दि० जैनसमाजके प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे। प्लेटफार्मपर लाल बनात बिछाई गई थी। मुख्य बाजारोमेसे जुलूस निकाला गया।

२८ दिसम्बर १९१२ को बम्बई प्रान्तिक सभाकी पहली बैठक शुरू हुई। प० धन्नालालजीने मगलाचरण किया। सेठ हीराचन्द नेमिचन्दके प्रस्ताव करनेपर मैं सभापति चुना गया। मैंने अपने भाषणमे जातिभेद-सम्बन्धी कुछ बातें कही तो कुछ सभासद् ऐसे बिगडे कि उन्हे शान्त करना दुष्कर हो गया। मूर्खताके सामने बुद्धिको हारना पडा और अल्पजनमतने बहुमतको दबा लिया। केवल दस-बीस महात्माओने ऐसा हुल्लड मचाया कि उस दिनकी सभाका कार्य समाप्त कर देना पडा। बादमें मालूम हुआ कि बाहरके सेठ लोगोकी तरफसे दो गुप्तचर भेजे गये थे और उन्हीकी कृपाकटाक्षसे यह सब कार्य्य हुआ। उन्होने बाजी-मार लेनेका तार उसी रोज दे दिया था। अन्ततः इस अधिवेशनमे सफलता अवश्य प्राप्त हुई। जो लोग अशान्ति उठानेवाले थे, और जिन्हे कुछ बाहरसे आये हुए महात्माओने बहकाकर उत्तेजित किया था, उन्होने पीछेसे पश्चात्ताप किया और उनमेसे कई भाइयोने मेरी विदाईके समय स्टेशनपर आकर प्रेमपूर्वक विदाई दी।

प० अर्जुनलाल सेठीको नजरबन्दीसे मुक्त करानेमे मैंने १९१३ से १९२० तक निरन्तर प्रयत्न किया। ब्र० सीतलप्रसाद, बैरिस्टर जगमन्दरलाल तथा महात्मा गाधीने पर्याप्त सहयोग दिया, कोशिश की।

मेरा विवाह बाल्यावस्थामे ही कर दिया गया। माताजीके मरने के कुछ दिन बाद छह बरसकी उमरमे ही मेरी सगाई हो गई। पत्नी मुझसे डेढ बरस छोटी थी। हम दोनो नई मन्दिरकी जनानी डयोढीके मैदानमे अनारके वृक्षके नीचे अनारकी कलियाँ चुन-चुनकर खेला करते थे। विवाह छह बरस पीछे हुआ।

विद्योपार्जनका शौक मुझे बचपनसे था। अपनी कक्षामें सर्वोच्च रहता था। विवाहके समय १२ बरसका था। विषयवासना जागृत नही हुई थी। एट्रेस परीक्षामे उत्तीर्ण हो चुका था। मई १८८९ मे पत्नी दिल्लीसे लखनऊ आई। सहवासके लिए मुझे और उसे लैम्प जलाकर कमरेमे बन्द कर दिया गया। वह लैम्पके पास बैठी रही, मैं पलगपर लेटा रहा। हाथ-

में लघुसिद्धान्तकौमुदी थी, व्याकरणके सूत्रोकी पुनरावृत्ति कर रहा था। न मैं पत्नीके पास गया, न वह मेरे पास आई। उसने कई दफा बाहर जाने-को दर्वाज़ा खटखटाया, और आखिर दर्वाजा खोल दिया गया। इस तरहके बराबर प्रयत्न किये गये, परन्तु हम आपसमे वार्तालाप तक नहीं करते थे।

सहधर्मिणीका स्वास्थ्य प्रबल था। ३१ बरसके वैवाहिक जीवनमे छह बच्चोकी जननी होनेपर भी उसको कभी हकीम, वैद्यकी आवश्यकता नही पडी। धार्मिक क्रियाकाण्डमें उसका गहरा श्रद्धान था। निर्जल उपवास महीनेमे एक-दो हो जाते थे। कभी-कभी निरन्तर दो दिनका निर्जल उपवास हो जाता था। और भी अनेक नियमोका पालन करती थी। पतली दवाका तो आजन्म त्याग था, केवल सूखी दवाकी छूट रखी थी, जिसके प्रयोगका कभी अवसर नही आया। १९१८ की अष्टाह्निकामे दो रोज़का उपवास करनेके बाद उसे हैजा हो गया और लाख प्रयत्न करने पर भी न बच सकी।

गृहिणीके देहान्तके पहले ही मैंने सरकारी वकालतसे तो त्यागपत्र दे दिया था। उसके देहान्तपर सब कानूनी पुस्तके तथा असबाब नीलाम करके दोनो कोठियाँ बेचकर, काशीवासके अभिप्रायसे बनारस चला गया।

काशी-स्याद्वाद-विद्यालयकी प्रबन्धकारिणी-समितिका सदस्य मै उसकी स्थापनाके समयसे बरसो तक रहा। जो बालक वहाँ भर्ती होते थे, उनको भोजन, वस्त्र, बिना दाम मिलते थे, और पढ़ाई नि.शुल्क थी ही। फिर भी कुछ विद्यार्थी ऐसी सकीर्ण प्रवृत्तिके थे कि समाजके प्रतिष्ठित सज्जनोसे गुप्त पत्र लिखकर आर्थिक सहायता प्राप्त कर लेते थे। इस व्यवहारसे महाविद्यालयकी महिमामे बट्टा लगता था। एक सज्जनने कितने ही कपड़ेके थान भेंट किये। कमेटीने विद्यार्थियोंके वस्त्र एक प्रकारके बनवा देनेका प्रस्ताव किया। इसपर विद्यार्थियोने विद्रोह मचा दिया कि हम सिपाहियोकी-सी वर्दी नही पहनेंगे। हम अपने मनका

कपडा और अपनी पसन्दकी काटका वस्त्र बनवायेंगे।

विद्यार्थियोमे यह भी कुटेव थी कि रसोईके समय अपनी-अपनी घीकी हाँड़ी लेकर जाते थे। कमेटीने निश्चय किया कि घी विद्यार्थियोके पास न रहे। सब घी दालमे रँधते समय डाल दिया जाय और रूखी रोटी परसी जाये। इसपर भी विद्रोह बढ गया। उद्दण्डताके कारण कुछ विद्यार्थियोको विद्यालयसे पृथक् करना पडा। मामला फिर कमेटीके सामने पेश हुआ। मैंने इसपर प्रबन्ध-समितिसे त्यागपत्र दे दिया। जैन जातिके विद्यार्थियोने महाविद्यालयको गिराकर अनाथालय-सा बना दिया है, और इसी कारण कोई प्रतिष्ठित सज्जन अपने बालक इस जैन-सस्थामें पठनार्थ नही भेजते।

१७ नवम्बर १९२२ को लखनऊसे दिल्ली पहुँचा। पचायती मन्दिरकी पञ्चकल्याणक-प्रतिष्ठाके अवसरपर महासभाको निमन्त्रित करनेका प्रस्ताव मैंने जोरसे भाषण देकर स्वीकार करा लिया, किन्तु मुख्य नेता, अधिकारप्राप्त पुरुषोका सहयोग नही मिला।

महासभाके अधिवेशनमें तुरन्त सदस्यपत्र भरवाकर सदस्य बना लिये गये। बैरिस्टर चम्पतरायजीके जैनगजट (हिन्दी) के सम्पादक होनेके प्रस्तावका समर्थन करनेको लाला देवीसहाय फीरोजपुर खडे हुए। उनको एक महाशयने पकडकर बिठा दिया और अनियमित अनधिकार बहुमतसे एक पण्डितपेशा महाशयको सम्पादक बनानेका प्रस्ताव पास करा लिया। ऐसी खुली धाँधली देखकर कितने ही सदस्य उठ खडे हुए और दूसरे मण्डपमें एकत्र होकर भारतवर्षीय दि० जैन परिषद्की स्थापना की। प्रथम अध्यक्ष रायबहादुर सेठ माणिकचन्दजी सेठी झालरापाटनवाले निर्वाचित हुए। ब्र० सीतलप्रसादजीने सदस्य-सूचीपर प्रथम हस्ताक्षर किये।

तीर्थक्षेत्र-कमेटीकी स्थापना जैनसमाजके वास्तविक दानवीर सेठ माणिकचन्दजीने की थी। वे स्वय उसके महामन्त्री थे। रोजाना कार्यालयमें आकर ४-५ घण्टे कार्य करते थे।

७ मार्च १९१२ को श्वेताम्बर जैन-सघकी ओरसे दिगम्बर जैन-समाजके विरुद्ध हजारीबागकी कचहरीमें नालिश पेश की गई। उनका दावा था कि सम्मेदशिखरजी निर्वाणक्षेत्रस्थित—टौक, मन्दिर, धर्मशाला सब श्वेताम्बर सघ द्वारा निर्मित हुई हैं। दि० जैनियोको श्वेताम्बर सघकी अनुमतिके बिना प्रक्षाल-पूजा करनेका अधिकार नही है, न वह धर्मशालामें ठहर सकते है। इस मुकदमेमें उभयपक्षके कई लाख रुपये व्यर्थ व्यय हुए!

१९१७ में मैं और भगवानदीनजी काग्रेस अधिवेशनके अवसर-पर कलकत्ते गये और वहाँ महात्मा गाधीसे मिलकर निवेदन किया कि आप इस मुकदमेबाजी और मनोमालिन्यका अन्त करा दे। महात्मा गाधीने हमारी प्रार्थना ध्यानसे सुनी और मामलेका निर्णय करना स्वीकार किया, और कहा कि चाहे जितना समय लगे, मैं इस झगड़ेका निवटारा कर दूँगा; किन्तु उभयपक्ष इकरारनामा रजिस्ट्री कराके मुझे दे दे कि मेरा निर्णय उभयपक्षको नि सकोच स्वीकार और माननीय होगा।

हम दोनो कितनी ही वार रायबहादुर बद्रीदासजीकी सेवामें उनके निवासस्थानपर गये और उनसे प्रार्थना की कि वह श्वेताम्बर समाजकी ओरसे ऐसे इकरारनामेकी रजिस्ट्री करा दें। हम दि० समाजसे रजिस्ट्री करा देनेकी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते है। लेकिन उन्होने बातको टाल दिया और मेल-मिलापके सब प्रयत्न व्यर्थ हुए। परिणामत जैन-समाजके प्रचुर द्रव्यका अपव्यय और पारस्परिक मनोमालिन्यकी वृद्धि हुई। वकील और पैरोकार-मुख्तार अमीर हो गये। मैंने ७ वर्षतक १९२३ से १९३० तक तीर्थक्षेत्र कमेटीका काम किया। ४६,००० रु० मेरे नामसे तीर्थक्षेत्र कमेटीकी वहीमें दान खाते जमा है।

१९२६ में काकोरी षड्यन्त्रका मुकदमा चला। मैंने रामप्रसाद विस्मिलकी नि शुल्क वकालत की। मैंने उसे सलाह दी कि वह काकोरी डकैती करना और क्रान्तिकारी दलका सदस्य होना स्वीकार कर ले। मैं उसे प्राणदण्डसे बचा लूँगा; क्योकि उसने किसी भी डकैतीमें किसी

महासभाके जन्मदाता

वंश-परिचय

श्री गुलाबचन्द्र टोग्या

राजा लक्ष्मणदासजीके पूर्वज श्री जिनदासजी, जयपुर राज्यान्तर्गत मालपुरा गाँवके रहनेवाले थे। आर्थिक स्थिति ठीक नही होनेके कारण जिनदासजीके दोनो पुत्र—फतहचन्दजी, मनीरामजी,—जयपुर चले गये। लेकिन वहाँकी भी व्यावसायिक स्थितिसे मनीराम–जैसे महत्त्वाकाक्षी परिश्रमी युवकको सन्तोष नही मिला। उनका उद्योगी स्वभाव किसी विशाल-क्षेत्रमें कुलाँचे भरनेको उतावला हो उठा। उन दिनो यातायातमें अनेक विघ्न-बाधाओ और आपदाओका मुकाबिला करना पडता था। कोई साहसी युवक घरसे बाहर पाँव रखनेका प्रयत्न करता भी था तो उसके पाँवोमें मोह-ममताकी ज़जीर इस तरह डाल दी जाती थी कि वह छटपटाकर रह जाता था। लेकिन मनीरामजी स्वभावत. स्वावलम्बी और इरादेके मजबूत थे, उनके पथमें यह सब विघ्न-बाधाएँ क्या आड़े आती ? वे जयपुरसे अज्ञात दिशाकी ओर निकल पड़े।

"जो बाहिम्मत हैं उनका रहमते इक साथ देती है।
क़दम ख़ुद आगे बढके मंज़िले मकसूद लेती है॥"

—गोयलीय

भाग्यकी बात, जिस धर्मशालामें मनीरामजी विश्राम कर रहे थे, उसीमें सेठ राधामोहनजी पारिख मृत्युशय्यापर पडे हुए छटपटा रहे थे। स्वार्थी नौकर सामान लेकर चम्पत हो गये थे। राज्य-सम्मानित और धनिक होते हुए भी निरीह और लाचार बने मृत्युकी घडियाँ गिन रहे थे।

उनकी यह स्थिति देखकर मनीरामजीका दयालु हृदय द्रवित हो उठा। पारिखजी जिस शोचनीय अवस्थामें पडे हुए थे, उन्हें देखकर किसी

हमने ला० जम्बूप्रसादजीको नहीं देखा, पर इस सारी स्थितिकी हम सही-सही कल्पना करते हैं, तो एक दृढ आत्माका चित्र हमारे सामने आ जाता है। आँधियोंमें अकम्प और संघर्षोंमें शान्त रहनेवाली यह दृढता, परिस्थितियोंकी ओर न देखकर, लक्ष्यकी ओर देखनेवाली यह वृत्ति ही वास्तवमें जम्बूप्रसाद थी, जो लाला जम्बूप्रसाद नामके देहके भस्म होनेपर भी जीवित है, जागृत है, और प्रेरणाशील है।

इस तस्वीरका एक कोना और हम भाँक लें। अबतक देखे तीनो कोनोंमें गहरे रग है, दृढताके और अकम्पके, पर चौथे कोनेमें बडे 'लाइट कलर' हैं—हल्के-हल्के झिलमिल और सुकुमार।

धर्मके प्रति आस्था जीवनके साथ लिये ही जैसे वे जन्मे थे। कॉलेज में भी स्वाध्याय-पूजन करते और धर्म-कार्योंमें अनुरक्त रहते। कॉलेजमें उन्हें एक साथी मिले ला० धूर्मसिंह। ऐसे साथी कि अपना परिवार छोडकर मृत्युके दिन तक उन्हींके साथ रहे। ला० जम्बूप्रसादके परिवारमें इसपर ऐतराज हुआ, तो बोले—मैं यह स्टेट छोड सकता हूँ, धूर्मसिंहको नहीं छोड सकता, और वाकई जीवनभर दोनोंने एक दूसरेको नहीं छोडा।

दत्तक पुत्रोंका सम्बन्ध प्राय अपने जन्म-परिवारके साथ नहीं रहता, पर वे बराबर सम्पर्कमें रहे और सेवा करते चले। अपने भाईकी बीमारीमें १०० रु० रोजपर वर्षों तक एक विशेषज्ञको रखकर, जितना खर्च उन्होंने किया, उसका योग देखकर आँखें खुली ही रह जाती हैं!

१९२१ में, अपनी पत्नीके जीवनकालमें ही आपने ब्रह्मचर्यका व्रत ले लिया था और वैराग्यभावसे रहने लगे थे। अप्रैल १९२३ में वे देहली-की बिम्बप्रतिष्ठामें गये और वहाँ उन्होंने यावन्मात्र वनस्पतिके आहार-का त्याग कर दिया। जून १९२३ में उन्होंने अपने श्रीमन्दिरकी वेदी-प्रतिष्ठा कराई और इसके बाद तो वे एकदम उदासीन भावसे सुख-दुःखमें समता लिये रहने लगे।

आरम्भसे ही उनकी रुचि गम्भीर विषयोंके अध्ययनमें थी—कॉलेज में बी० ए० में पढते समय, लॉजिक, फिलासफी और संस्कृत साहित्य

उनके प्रिय विषय थे। अपने समयके श्रेष्ठ जैन विद्वान् श्री पन्नालालजी न्यायदिवाकर सदैव उनके साथ रहे और लालाजीका अन्तिम समय तो पूर्णतया उनके साथ शास्त्रचर्चामें ही व्यतीत हुआ।

उनकी तेजस्विता, सरलता और धर्मनिष्ठाके कारण समाजका मस्तक उनके सामने झुक गया और समाजने न सिर्फ उन्हें 'तीर्थभक्त-शिरोमणि' की उपाधि दी, अपना भी शिरोमणि माना। अनेक संस्थाओ-के वे सभापति और सचालक रहे और समाजका जो कार्य कोई न कर सके, उसके करनेकी क्षमता उनमें मानी जाने लगी।

समाजकी यह पूजा पाकर भी, उनमें पूजाकी प्यास न जगी। उन्होने जीवनभर काम किया, यशके लिए नही, यह उनका स्वभाव था, बिना काम किये वे रह नही सकते थे। उनकी मनोवृत्तिको समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम यह देखें कि सरकारी अधिकारियोके साथ उनका सम्पर्क कैसा रहा?

उनके नामके साथ, अपने समयके एक प्रतापी पुरुष होकर भी, कोई सरकारी उपाधि नही है। इस उपाधिके लिए खुशामद और चापलूसी-की जिन व्याधियोकी अनिवार्यता है, वे उनसे मुक्त थे। उनके जीवनका एक क्रम था—आज तो सरकारी अधिकारी ही अपने मिलनेका समय नियत करते है, पर उन्होने स्वय ही सायकाल ५ बजेका समय इस कार्यके लिए नियत कर रक्खा था। जिलेका कलक्टर यदि मिलने आता, तो उसे नियमकी पावन्दी करनी पड़ती, अन्यथा वह प्रतीक्षाका रस लेनेके लिए बाध्य था।

लखनऊ दरबारमें गवर्नरका निमन्त्रण उन्हें मिला। उन्होने यह कहकर उसे अस्वीकृत कर दिया कि मैं तो ५ बजे ही मिल सकता हूँ, विवश, गवर्नर महोदयको समयकी ढील देनी पड़ी। आजके अधिकाश धनियों का नियम तो दारोगाजीकी पुकारपर ही दम तोड़ देता है। कई बार उन्हें ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनानेका प्रस्ताव आया, पर उन्होने कहा—"मुझे

अवकाश ही नही है।" यह उनके अन्तरका एक और चित्र है, साफ और गहरा।

१० अगस्त १९२३ को वे यह दुनिया छोड़ चले। मृत्युका निमन्त्रण माननेसे कुछ ही मिनट पहले उन्होने नये वस्त्र बदले और भूमिपर आनेकी इच्छा जताई। उन्हें गोदमें उठाया गया और नीचे उनका शव रखा गया। जीवन और मृत्युके बीच कितना सक्षिप्त अन्तर। ला० जम्बूप्रसाद, एक पुरुष, सघर्ष और शान्ति दोनोमें एक रस! वे आज नही है, किन्तु उनकी भावना आज भी जीवित है।

—अनेकान्त १९४३

सेठ मथुरादास टैडया

जन्म— वि० स० १९२९

स्वर्गवास— वि० स० १९७५

सेठ मथुरादास टड़ैया

श्री 'तन्मय' बुखारिया

'आपका नाम ?'

'निवास-स्थान ?'

'ललितपुर।'

'ललितपुर ? कौन-सा ललितपुर ?'

'ललितपुर, ज़िला झाँसी।'

'ज़िला आ आ झाँसी ई ..ई, सेठ मथुरादासका ललितपुर ?'

अब मेरी बारी थी। साश्चर्य मैंने उत्तर दिया—'सेठ मथुरादास ? सेठ मथुरादासको तो मैं जानता नहीं। आप शायद किसी दूसरे ललितपुरकी बात कह रहे हैं ?'

'खैर, होगा। आप जाइए। कमरा न० ११ खाली है, उसमें सामान रख लीजिए।'

उस समय मेरी आयु लगभग १६-१७ वर्षकी रही होगी। बात इन्दौरकी एक धर्मशालाकी है। कमरा प्राप्त करने जब मैं व्यवस्थापक के पास गया, उस समय जो बातें हुईं, वही ऊपर अंकित हैं। उस समय मेरा ज्ञान, अनुभव और परिचय आदि इतना अत्यल्प था कि यदि मैं सेठ मथुरादासको नहीं जान सका तो यह उचित तथा स्वाभाविक ही था। किन्तु, 'नहीं जानता', उस समय यह मैंने कह तो दिया, पर मेरे सहज जिज्ञासु और कुतूहलप्रिय हृदयमें, सेठ मथुरादासजीके प्रति परिचयेच्छा अवश्य ही अंकुरित होकर रह गई और उसीका परिणाम है यह लेख। आखिर कौन हैं ये सेठ मथुरादास, जिनके नामसे ही ललितपुरको लोग जानने लगे हैं, इस कौतूहलने मुझे शान्त नहीं रहने दिया और इसीलिए

जब यात्रासे घर वापिस आया तो यथावसर और यथाप्रसंग मैंने बड़े-बुजुर्गोंसे पूछ-ताछ प्रारम्भ की। उत्तर-स्वरूप उनसे जो कुछ सुननेको मिला, वह आज भी मेरे सश्रद्ध हृदयकी चिर-स्मरणीय निधि है, और आज जब कि मुझमें इतनी समझ आ गई है कि मैं 'हिन्दुस्तान, गाँधीका हिन्दुस्तान', इस उक्तिमें निहित भावको जल्दी ही ग्रहण कर लेता हूँ, तब सोचता हूँ कि सेठ मथुरादासजीसे सम्बन्धित यह जन-कथन, 'ललितपुर, सेठ मथुरादासजीका ललितपुर', क्या ऐसी ही बड़ी उक्तियोंका छोटा संस्करण नहीं है। गाँधीके नामसे, संसार हिन्दुस्तानको जानता है, पर क्या यह भी सच नहीं है कि मेरे छोटे-से ललितपुरको लोग सेठ मथुरादास के नामसे जानते हैं?

× × ×

इकेहरा-छरेहरा शरीर, ठिगना कद, ऊँचा और चौड़ा ललाट, गोरा रंग, दोनों आँखोंके आकारमें इतना कम और सूक्ष्म अन्तर कि वह दोष न होकर कटाक्ष बन गया। पहनावेमें महाजनी ढंगकी बुन्देलखंडी धोती अथवा सराई (चूड़ीदार पायजामा), तनीदार अँगरखा, सिरपर मारवाड़ीसे सर्वथा भिन्न बुन्देलखंडी लाल पगड़ी, गलेमें सफेद दुपट्टा। स्वभाव, मानो मोम और पाषाण—दोनोंका सम्मिश्रण। क्षण भरमें सावेग, क्षण भरमें करुण। बादाम या नारियलकी भाँति ऊपरसे कठोर, भीतरसे कोमल—अन्त सलिल, पाषाणके नीचे प्रवहमान निर्झर। बिना गाली दिये बात नहीं करेंगे, किन्तु गाली वह जो शब्दोंसे तो गाली लगे किन्तु भावनामें आशीर्वाद-सी। स्वभावकी इस अप्रियकर विशिष्टता के होते हुए भी लोकप्रिय इतने कि सरकारकी ओरसे कई वर्षों तक स्थानीय म्युनिसिपल बोर्डके वाइस चेयरमैन नियुक्त होते रहे। एक बार अखिल भारतवर्षीय परवार-सभाके सभापति भी चुने गये थे। धर्मसाधना उनकी प्रकृति थी और आयुर्वेद हॉबी। फलत धार्मिक और आयुर्वेदिक दोनों ही विषयोंके सुन्दर ग्रंथोंका विशाल संग्रह किया। पुस्तकालय और औषधालयकी स्थापना की।

दूर-दूर तक उनकी प्रसिद्धिका प्रमुख कारण था, उनका वह समय और उदार हृदय, जो क्षेत्रपालजीकी धर्मशालासे प्रतिदिन २-४ किन्हीं भी अनजान-अपरिचित यात्रियोको सस्नेह अपने घर लिवा लाया करता था और उन्हें सप्रेम तथा ससम्मान भोजन कराके सन्तुष्ट और सुखी होता था। उनके इस स्वभावसे सामजस्य करनेकी दिशामें घरकी महिलाएँ इतनी अभ्यस्त हो गई थी कि १५-२० मिनिटके भीतर गरम पूडी और दो साग तैयार कर देना उनके लिए अत्यन्त सामान्य बात थी। न जाने किस समय अतिथि आजाएँ और भोजन बनाना पड जाय, चूल्हा कभी बुझ ही न पाता था।

ललितपुरका सुप्रसिद्ध मदिर 'क्षेत्रपाल' उन्हींके परिश्रम और सरक्षणका फल है। एक बार स्थानीय वैष्णवोने उसपर अपना अधिकार घोषित किया था, किन्तु यह सेठ मथुरादासजीका ही साहस था कि उन्होने उसको अदालती और गैरअदालती—दोनो ही तरीकोसे लडकर जैन-मदिर प्रमाणित और निर्णीत कराया। उनके लिए क्षेत्रपाल सम्मेद-शिखर और गिरिनार-सा ही पूज्य था। किस प्रकार उसकी यशोवृद्धि हो, प्रसिद्धि हो, आर्थिक स्थिति सुदृढ हो, वह तीर्थ, यात्रियोंके लिए आकर्षणका केन्द्र बने—यही उनके जीवनकी सबसे बडी महत्वाकाक्षा थी। उनका प्रिय क्षेत्रपाल, जैनगति-विधियोका एक सक्रिय केन्द्र बन सके, इसीलिए उन्होने, वहाँ अभिनन्दन पाठशालाकी स्थापना की, जो अभी थोडे दिनो पहले ही बन्द हुई है। क्षेत्रपालके प्रति, सेठजीके मोह की पराकाष्ठा थी कि वे अपने पीनेके लिए जल भी, एक मील दूर क्षेत्रपाल स्थित कुएँसे ही मँगाया करते थे। क्षेत्रपालके निकटस्थ कुछ भूमि, उन्होने स्थानीय जैन-समाजसे कुछ विशेष शर्तोपर प्राप्त कर, अपने लिए एक बगीचेका निर्माण कराया था, जो आज भी है। प्रतिदिन प्रात काल ही इस बगीचेसे फूलोकी एक बडी टोकरी उनकी दूकानपर पहुँच जाया करती थी कि नगरके किसी भी व्यक्तिको—विशेषतया हिन्दुओको, जिन्हे पूजाके लिए फूल अभीष्ट होते है, वे सहज-सुलभ हो सकें। जब तक

जीवित रहे, प्रतिदिन प्रात और सायकाल क्षेत्रपाल जाकर पूजन करना तथा शास्त्र-प्रवचन सुनना—उनकी नियमित रुचि थी। क्षेत्रपालमें सुन्दर धार्मिक ग्रथोका सग्रह हो सके, इस इच्छासे उन्होने न केवल वहुत से वहुमूल्य ग्रथोको प्रयत्नपूर्वक प्राप्त ही किया वल्कि वहुत-से लिखधारियो (हाथसे ग्रथोकी नकल करनवाले लेखको) को आश्रित रखकर उनसे भी ग्रथ लिखाये।

उनकी पारिवारिक आर्थिक स्थितिकी आज जो सबलता है, उसका वहुत वडा श्रेय उनके व्यवसाय-कौशलको ही है। वम्वई, टीकमगढ, महरौनी, पछार, वामौरा, चँदेरी, हरपालपुर आदि-आदि कई मडियोमें उनकी गद्दियाँ थी, जिनकी सुव्यवस्था वे अपने सुयोग्य भतीजे पन्नालालजी टडैयाके सहयोगसे करते थे।

उनकी अनुकरणीय विशेषता थी कि इतने निपुण और वडे व्यौपारी होनेपर भी 'वनियापन' उन्हे छू नही गया था। उनके मुनीम, नौकर-चाकर जहाँ उनकी गालियाँ सुननेके अवश पात्र थे, वहाँ उनके अत्यन्त उदार सरक्षणके अधिकारी भी। सम्मेदशिखरके आसपास, सम्भवतः कलकत्ता या पटना, व्यावसायिक कार्यसे जाकर भी, उनका एक मुनीम वन्दनार्थ शिखरजी भी क्यो नही गया, इसपर उस मुनीमको उन्होने इतना डाटा कि उसे दूसरी वार, ऐसा ही अवसर आनेपर शिखरजीकी यात्रा करनी ही पड़ी। मार्गमे क्यो उस मुनीमने अपनी एक वक्तकी खुराकमे केवल तीन आने ही खर्च किये और इस प्रकार सेठ मथुरादासकी मुनीमीके पद को लज्जित किया, इसपर उन्होने उसको इतनी गालियाँ दी कि सुनने वालोको कानोपर उँगलियाँ रख लेनी पडी। नौकरी करते-करते जो नौकर या मुनीम मर गया, उसके वाल-वच्चोको आजीवन पेंशन देना और उनके सुख-दु खकी खोज-खवर एक कौटुम्विककी भाँति ही रखना—आज कितने धनी ऐसा करते है? सेठ मथुरादासके लिए यह सामान्य वात थी!

वयोवृद्ध चौधरी पलटूरामजी, जो आज भी जीवित है और सेठ मथुरादासजीकी चर्चा आते ही जिनके नेत्र सजल तथा कंठ आर्द्र हो उठता

है, उनके एक प्रकारसे दाहिने हाथ ही थे। ललितपुर-समाजमे, चौधरी जी अपनी पचायत-चातुरीके लिए विख्यात है। व्यवहार-कौशलकी यह देन—उन्होने सेठ मथुरादासजीके चरणोमें बैठकर ही प्राप्त की थी—इसको वे आज भी गर्व और कृतज्ञतासे स्वीकार करते है, और इन पक्तियो का लेखक चौधरीजीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है कि सेठजीके सम्बन्ध मे इतनी अधिक और प्रामाणिक सामग्री उन्होने उसको दी।

सेठजी, एक बार, एक विवाहमे सम्मिलित होने मुँगावली गये। चौधरी पलटूराम भी साथ थे। सहसा न जाने क्या सूझी कि चौधरीजीको बुलाकर बोले—'अरे, पल्टुआ! (चौधरीजीके प्रति यही उनका स्नेह-सिक्त सम्बोधन था) सुना है, यहाँ जज साहब रहते है? उनसे मिलना चाहिए।' चौधरीजीने उत्तर दिया—'अच्छी बात है, शामको चले चले।' इस सुझावपर चौधरीजीको उन्होने इतनी गालियाँ दी कि चौधरी सहमकर रह गये। बोले, 'अबे पल्टुआ! इतना बडा हो गया, पर तुझमें इतनी अकल नही आई? मै मिलने जाऊँगा? अबे, वह कामकर कि जज साहब खुद अपने डेरेपर मिलने आये।'

चौधरीजीमे, चातुर्य जन्मजात रहा है, तत्काल बोले—'ठीक है, दीजिये मुझे तीन सौ रुपये—ऐसा ही होगा।' रुपयोकी व्यवस्था हो गई। बाज़ार जाकर चौधरीजीने दो-चार स्थानीय पचोको साथ लिया। सस्तेका जमाना था। बहुत-सी धोतियाँ, कम्बल, कापियाँ, किताबें, पेंसिले, दावाते आदि खरीदी। स्थानीय पाठशालाओके विद्यार्थियोको सूचित किया। गाँवमे जो गरीब थे, उनको खबर कराई। सामानको एक सार्वजनिक स्थानपर व्यवस्थित किया। पचोंको लेकर जज साहबके बँगलेपर पहुँचे। निवेदन किया कि आज सायकाल, स्थानीय विद्यार्थियो और गरीबोको, सेठ मथुरादासजी ललितपुरवालोकी ओरसे पुरस्कार वितरित किये जायेंगे, सेठजीकी इच्छा है कि यह कार्य आपके कर-कमलो से सम्पन्न हो। जज साहबने प्रस्तावको सहर्ष स्वीकृत किया। कार्य हुआ। सेठजीकी उदारतासे जज साहब इतने प्रभावित हुए कि दूसरे दिन उनके

डेरेपर पहुँचे और उनको अपने घर भोजनके लिए निमन्त्रित किया। चौधरी जी कह रहे थे कि जज साहबने उस दिन जो स्वागत-सत्कार किया, वह आज भी उनकी स्मृतिमें हरा है।

अपने जीवनमें उन्होने शायद ही कोई यात्रा ऐसी की हो, जिसमें मार्ग-व्यय आदिके अतिरिक्त २००-४०० रु० उनके और भी खर्च न हुए हो। विवाह-बारात आदिकी यात्राएँ भी उनके इस स्वभावकी अपवाद नही थी। किसीकी भी बारातमे जाते समय घरसे १०-२० सेर मिठाई-पूडी, काफी पान-सुपारी, इलायची आदि साथमें ले जाना और रास्ते भर बारातियोकी इस प्रकार खातिर करते चलना, मानो उन्हींके लड़केकी बारात हो, आज किसके द्वारा यह उदारता साध्य है? तीर्थ, विमान, अधिवेशन आदि धार्मिक या सार्वजनिक यात्राओके समय समस्त सहयात्रियोके सुखदु:खका दायित्व, मानो नैतिक रूपसे वे अपना ही समझते थे, और अपनी इस वृत्तिके प्रभावमे पैसा तो उदारतापूर्वक वे खर्च करते ही थे, अवसर आ पड़नेपर तन-मन देनेमे भी उन्हें सकोच नही होता था। एक बार प्रवासमे उनके सहयात्री श्री दमरू कठेल जब बीमार हो गये थे, तो उनके पाँव तक उन्होने बेझिझक दाबे थे।

अपने नगर ललितपुर और प्रदेश बुन्देलखडके प्रति उनके हृदयमें नैसर्गिक ममता थी। एक बार, कुण्डलपुरमे महासभाके अधिवेशनके समय, एक व्यक्ति द्वारा बुन्देलखडके प्रति अपमान-जनक शब्द कहे जाने पर, उन्होने इतना सख्त रुख अख्तियार किया कि आराके प्रसिद्ध रईस और अधिवेशनके सभापति स्वय देवकुमारजी उन्हें मनानेके लिए आये और मुश्किलसे उन्हे शान्त कर सके। ललितपुरके प्रति लोगोमे सम्मान की भावना आये—उनका सदैव यही प्रयत्न रहा करता था। मस्तापुर-रथ-यात्राके समय वे तत्कालीन भावी सिंघईसे अपना यह आग्रह स्वीकार कराके ही माने थे कि पहले ललितपुरके विमानोका स्वागत किया जाय।

उस समय समाज-सुधारके न तो इतने पहलू ही थे और न उनके प्रेरक बहुत-से दल ही। समाजमे नारीकी स्थितिके सम्बन्धमें उनका

दृष्टिकोण बिलकुल सीधा-सादा था। एक इसी विषयमें ही क्यो, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वे 'मर्यादा' के हामी और पोषक थे। मदिरोमे स्त्रियां अधिक तडक-भडकसे न आये, उनकी गतिमे नारी-सुलभ लज्जा हो, न कि उच्छृखल चचलता, उनकी पैनी दृष्टि सदैव यह 'मार्क' करनेके लिए तत्पर रहा करती थी। एक बार, सम्मेदशिखर क्षेत्रपर पजाब प्रदेशकी कुछ स्त्रियाँ कुएँपर बैठी हुई नग्न स्नान कर रही थी। यह दृश्य, सेठजीसे न देखा गया। उसी समय कई थान मँगवाकर, कुछ बल्लियाँ खडी करके उनके सहारे एक पर्दा-सा तनवा दिया।

उनकी धर्म-साधना केवल पूजा-पाठ तक ही सीमित नही थी। सम्भवत. यदि कभी अवसर आ जाता तो धर्मके लिए अपने प्राण दे देनेमे भी उन्हे सकोच न होता। एक बार, स्थानीय जैन मदिरपर, होली खेलने-वाले कुछ लोगोने गोबर फेंक दिया। खबर सेठजी तक पहुँची। सब काम छोड, उसी समय एस० डी० ओ० के पास दौडे गये। एस० डी० ओ० अग्रेज था, पर चर्चिल-परम्पराका नही। सेठजीका बहुत सम्मान करता था। तत्काल मौकेपर पहुँचकर जाँच कराई। अपराधियोकी खोज की। जिन लोगोने यह निंद्य हरकत की थी, उन्हींसे गोबर साफ कराया गया। नसेनी भी उनको नही दी गई। एक दूसरेके कन्धोपर चढकर ही उन्हे गोबर पोछना पडा।

इसी प्रकार '**अहिंसा परमो धर्मः**' भी उनका मात्र मौखिक सिद्धान्त ही नही था। व्यवहारमे भी उसका प्रयोग उन्हे अभीष्ट रहता था। एक बार एक गाय भागती-भागती आई और सेठजीके मकानमें घुसती चली गई। पीछे-पीछे उसका स्वामी कसाई भी दौडता हुआ आया। सेठजीने स्थिति समझी और नौकरोको आदेश दिया कि वह घरकी अन्य गाय-भैंसोके साथ 'थान' पर बाँध दी जाय। कसाई, कसाई पीछे था और व्योपारी पहले। मौकेको ताड गया। गायके अनाप-शनाप दाम माँगने लगा, किन्तु सेठजीके आगे उसकी एक भी चालाकी न चली। उन्होने चार भले आदमियोको बुलाकर निर्णय लिया और उचित मूल्य देकर उस कसाईको विदा किया।

निरन्तर देना, और बदलेमे कुछ भी पानेकी आशा न करना, उनके जीवनका यह आदर्श था। एक बार टीकमगढ़की एक स्त्री अपने तीन भूखे-प्यासे बच्चो-सहित उनके दरवाजे आ गिरी। बोली, जैन हूँ, तीन दिनसे निराहार हूँ। सेठजीने तत्काल उसको ससम्मान प्रश्रय दिया। उसके स्नानादिकी व्यवस्था की। भोजनकी सामग्री दी, बर्तन दिये कि वह स्वयमेव शुद्ध विधिपूर्वक बनाकर खा ले। सेठजीको कुतूहल हुआ कि स्त्री, वास्तवमे, जैन है या यो ही झूठ बोलती है। पल्टूराम चौधरी-को साथ लेकर, छिपकर उसकी भोजन बनानेकी विधिका निरीक्षण करने लगे। स्त्री रसोई बना रही थी, उधर बच्चे भूखके मारे चिल्ला रहे थे। स्त्रीने पहली ही रोटी तवेपर डाली कि बच्चोका धैर्य समाप्त हो गया। वे उसी अधकच्ची रोटीको ले लेनेके लिए लपके। सेठजीसे यह करुणाजनक दृश्य न देखा गया। उसी समय नौकरके हाथ थोडी-सी मिठाई भेज दी। क्षुधातुर बच्चोको सब्र कहाँ? एक बच्चेने एक साबित लड्डू अपने छोटे-से मुँहमे ठूंस लिया और उसे निगलनेके लिए व्याकुलतापूर्वक रुआसा हो उठा। जैसे-तैसे स्त्रीने उसके मुँहमेंसे लड्डूको तोड-तोडकर निकाला और फिर अपने हाथो थोड़ा-थोड़ा-सा खिलाया। तत्पश्चात् हाथ धोकर रोटियाँ सेकने लगी। वह जैन थी और विधिपूर्वक ही उसने भोजन बनाया खाया।' सेठजी सन्तुष्ट हुए, किन्तु साथ ही क्षुधाजनित व्यथाको साक्षात् देख इतने विगलित भी हुए कि वे उस दिन एकान्तमे बैठकर घंटो रोते रहे। उस स्त्री और उसके बच्चोको रोटी-कपडो और वेतनपर नौकर रख लिया। मरते समय वेतन-स्वरूप जमा हुए उसके रुपये तथा अपनी ओरसे भी २५० रु० देकर उसको इन शब्दोके साथ बिदा किया कि शायद उनकी मृत्युके बाद उनके उत्तराधिकारी उसके साथ निर्वाह न कर सकें, अत वह जाये और उन रुपयोसे कोई छोटी-मोटी पूंजीकी जीविका प्राप्त करके गुजर करे।

चाहे पारिवारिक हो चाहे सामाजिक, चाहे नागरिक हो, चाहे प्रादेशिक, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें उनकी उदारता स्पष्टतया परिलक्षित थी।

अपनी पुत्री शान्तिका विवाह किया तो इस धूमधामसे कि बारात देखनेके लिए आसपासके गाँवसे इतने आदमी आये कि उस दिन प्रत्येक घरमे २-२, ४-४ अतिथि ललितपुरमें थे। प्रत्येक नागरिकके घर मिठाई 'बायने' के रूपमें पहुँचाई गई। कोई भी सामाजिक त्योहार या पर्व ऐसा नही होता था, जिसपर सेठजीकी ओरसे समस्त समाजकी 'पगत' नही की जाती हो। जिस नगर या गाँवकी यात्रा की, वही गरीबो और विद्यार्थियो को पुरस्कार वितरित किये। कोई भी याचक चाहे वह चन्दा लेनेवाला हो, चाहे सामान्य भिक्षुक, कभी उनके दरवाजेसे खाली हाथ वापिस नही गया।

सेठ पन्नालाल टडैया, उनके सुयोग्य भतीजे थे। पुत्र एक ही है—हुकमचन्द टडैया, बिल्कुल वही रूपरग; आज भी है। मथुरादासजी की न्याय-प्रियता, उदारता, स्वाभिमान-भावना और व्यवहार-कौशल—सौभाग्यवश, स्वभावकी सभी विशिष्टताएँ पन्नालालजीको वशोत्तराधिकारमे मिली थी। सेठ मथुरादासजी द्वारा स्थापित बहुत-सी परम्पराएँ सेठ पन्नालालजीने बहुत दिनो तक यथारूप प्रचलित रखी। कालवश आज सेठ पन्नालालजी भी स्वर्गस्थ है। सेठ मथुरादासजी और पन्नालालजीकी महानताके अवशेष, यद्यपि उनके वर्त्तमान वशज अभिनन्दनकुमारजी टडैया तथा जिनेश्वरदासजी और हुकमचन्दजी द्वारा आज भी कुछ-कुछ सुरक्षित है, किन्तु निश्चय ही तुलनाकी दृष्टिसे वे पासग भी नही है, किन्तु जहाँ तक मथुरादासजी तथा पन्नालालजी द्वारा अपनाई गई विशेषताओसे तुलनाका प्रश्न है, वही तक यह बात घटित है। नगरके अन्यान्य परिवारोकी तुलनामे तो आज भी इसी वशका पलडा भारी ठहरेगा, इससे इनकार नही किया जा सकता।

सेठ मथुरादासजीका जन्म लगभग स० १९२९-३० में और मृत्यु सं० १९७५ में हुई। धन्य है उनके पिता सेठ मुन्नालालजीको, जिन्होने ऐसे पुत्र-रत्नको प्राप्त किया था।

१५ जुलाई १९५१

सर मोतीसागर

सर मोतीसागर जीका नाम सुना था, दूरसे एक बार देखा भी था। १९३० के असहयोग आन्दोलनमें तीन माहकी मुझे सजा मिली कि जेलमें ही १२४ धाराके अन्तर्गत दो वर्षकी कैदका हुक्म और सुना दिया गया। कहीं दूसरे कार्यकर्त्ताओंके साथ भी इस तरहका गैरकानूनी व्यवहार न हो, इसी आशकासे काँग्रेस-कार्यालयसे अपील करनेका आदेश प्राप्त हुआ। अपीलको धन कहाँसे आवे, इस दर्देसरसे तो चुपचाप जेल काटना ही श्रेयस्कर समझा गया। न जाने सर मोतीसागर जीके कानमें यह भनक कैसे पडी? चटपट उन्होंने निःशुल्क अपीलकी पैरवी की जिम्मेवारी स्वयं अपने आप ले ली। जरूरी कागजात भी मँगवा लिये और अपील सुनवाईकी तारीख भी निश्चित हो गई। लेकिन भाग्यकी अमिट रेखाएँ कौन मेट सकता है? अपीलकी तारीखसे दो दिन पूर्व अकस्मात् उनका स्वर्गवास हो गया। मुझे लाहौरसे तार मिला तो मैंने विषाद भरे स्वरमें कहा—"यहाँ न्यायकी आशा न देख, वे ईश्वरकी अदालतमें फरियाद करने गये हैं। इन्साफ होनेपर ही वापिस आएँगे।" लेकिन उनका साधु और परोपकारी मन इस दुनियासे ऐसा उचाट हुआ कि वापिस आनेका नाम तक नहीं लिया।

—गोयलीय

३१ अक्टूबर १९५१

सर मोतीसागर : एक राजा साधु

श्री कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर

पासकी भी एक तस्वीर होती है और दूरकी भी। पासकी तस्वीरमें हाथ-नाक ही नही, तिल और रेखाएँ भी साफ दिखाई दे जाती है। दूरकी तस्वीरमें यह सब बात तो नही होती, पर चित्रकार अच्छा हो, तो झिलमिल वातावरणका एक अद्भुत सौन्दर्य उसमें अवश्य होता है।

स्वर्गीय सर मोतीसागरको मैंने कभी नही देखा, पर उन्हें पूरी तरह जाननेवालोसे उनके सम्बन्धमें इतना सुना है कि मुझे अक्सर ऐसा लगता है कि मैं बहुत दिन उनके पास रहा हूँ। भावनाकी इसी छायामें जब-जब मैं उनकी समीपता अनुभव करता हूँ, मुझे लगता है, मैं एक ऐसे व्यक्तित्व-के पास बैठा हूँ, जिसमें पुराने युगके दो व्यक्तित्व एक साथ समाये हुए है.—एक चमकदार राजाका और दूसरा शान्त साधुका, और शक्तिके साथ भक्तिका ऐसा सरल स्पर्श मुझे मिलता है कि जैसे अभी-अभी मैं किसी उपवनसे घूमकर लौटा हूँ।

× × ×

तीन सस्मरणोमें उनके तीन चित्र है, जो मिलकर उनका एक ऐसा चित्र बनाते है, जिसमें एक्स-रेकी तरह उनका अन्त करण तक साफ दिखाई देता है?

कालेजके विद्यार्थी-साथियोमें मोतीसागरकी सच्चरित्रताका आतङ्क था। वे न कभी किसी अश्लील बातचीतमें भाग लेते, न कार्यकलापमें। इससे साथी उनका आदर तो करते, पर कुढते भी और सदा इस फिक्रमें रहते कि कैसे इसकी भगताई ढीली पड़े।

एक दिन मोतीसागरके पिताजी कही बाहर गये थे कि कुछ साथियो-ने उनसे कहा—"मोती! कल शामको हम तुम्हारे घर आवेंगे!" वे बहुत खुश हुए।

मैं उनके अहसानोसे कितना दबा हुआ हूँ ?

आज एक पुत्र अपने पिताको उनकी मौजूदगीमें किन शब्दोमें श्रद्धा-जलि दे, समझ नही पा रहा हूँ। मुझे सकोच है, तो इतना ही कि हम उनकी उच्चता और गभीरताको पा न सके, उनके वारिस होकर भी। आज जब अपने भावोको उनके समक्ष प्रकट करनेका सुअवसर मिला है, तो मैं तो परमेश्वरसे यही प्रार्थना करूँगा कि परिवारके लिए, समस्त जैन-समाज एव व्यापारिक समाजके लिए वे शतायु हो और हम सबपर उनकी सरपरस्ती बनी रहे।

आज सेठ हुकमचन्दजी हमारे बीच मौजूद है। अत उनके प्रखर व्यक्तित्वका महत्त्व हम समझ नही पा रहे है। मेरी मान्यता है कि भारत-के व्यावसायिक एव औद्योगिक गगनमण्डलमें फिर कभी सेठ साहब-जैसा प्रतापी सितारा प्रकट होना असभव नही, तो अत्यन्त कठिन अवश्य है। सो भगवान् उन्हें चिरायु करें, यही मेरी पुन पुन प्रार्थना है।

हुकुमचन्द-अभिनन्दन-ग्रन्थ

मई, १९५१

जान स्टुअर्ट मिल २५५
जार्ज बर्नार्ड शा १२८
जिगर मुरादाबादी ३३९, ३६३
जिनदास ४७८, ४८६
जिनविजय मुनि २६५, २७०
जिनेन्द्रचन्द्र २२
जिनेश्वरदास (टडैया) ५३८
जिनेश्वरदास 'माईल' २२६, ३१२, ३१८, ३४७
जियालाल ९, २७५, २७६
जीवनाथ शास्त्री ६१, ७८
जीवराम लल्लूराम शास्त्री १५३
जीवाजी राव सिन्धिया ४७९
जीवाराम ७५
जुगमन्दरदास २४, ३१८, ३४७, ३४८, ४३३, ५४५, ५४६
जुगमन्दिरलाल जैनी (बैरिस्टर) ३११, ३२१, ४४४, ४४८
जुगलकिशोर मुख्तार ५५, १९६, २०७, २०८, २११, २१६, २१७, २१८, २२३, २३८, २६७, २७८, ५५८
जुहारमल मूलचन्द्र सेठ १५१
जैम्स प्रेट (प्रो०) ३१२
जैनेन्द्रकुमार २२९, २३९, २६३, ४६१
जैनेन्द्रकिशोर ३०७, ३०९, ३२०
जौक ३३१
ज्ञानचन्द्र ९, २७७, २९९
ज्ञानानन्द १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८४, ५१७
ज्योतिप्रसाद ४२२, ५५८

झ

झम्मनलाल ६१, ६७
झूताराम सिंघई ३४६

ट

टोडरमल १५९

ठ

ठाकुरप्रसाद ७६, ७८

ड

डेविस कर्नल ४३८

त

तख्तमल जैन ५८९
'तन्मय' बुखारिया १९, ५३०
तारणस्वामी ३५
तुलसी १९, ३७३
तुलसीदास (विद्यार्थी) ७१
तुलसीराम ३१३

द

दमरू कठेल ५३५
दयाचन्द्र गोयलीय २८९ २९०, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३६६, ४४१
दयानन्द (स्वामी) १९३

नेमिसागर वर्णी ११९, ३०९, ५१६, ५२०
नेमिसुन्दर वीवी १२०

प

पद्मनन्दि ३४, ९६
पद्मश्री ५५८
पन्नालाल ३०
पन्नालाल अग्रवाल ३५, २२५, ४०३, ४७६, ५४६
पन्नालाल ऐलक ३२, ४४१, ५०७
पन्नालाल टडैया ५३३, ५३८
पन्नालाल न्यायदिवाकर ५७२
पन्नालाल वाकलीवाल ७५, १८५, १८६, १८७, १८९, १९०, २५१, २८१, ३०७, ३१०, ३१५
परमानन्द जैन शास्त्री ५९
पलटूराम चौधरी ५३३, ५३४, ५३७
पॉचोदेवी ३४४
पात्रकेसरी २२०, २३६
पारसदास (रा० व०) ९, ५५७
पार्वतीदेवी ३९१, ३९२, ५०७
पीतचन्द्र २९६
पुण्यविजय (मुनि) २३३
पूज्यपाद ६१, २३८
प्यारीवाई ११७
प्यारेलाल ५०
प्यारेलाल (पडित) २७६
प्यारेलाल (वकील) ३८४, ३८८, ३९५, ३९७
प्रकाश ३६६
प्रकाशचन्द्र ३४५, ३५६, ३६८
प्रतापमुनि ३१३
प्रतापसिंह ३६६
प्रभाचन्द्र २३८
प्रभुदास ११८, ५१८
प्रभूराम ३१२
प्रेमचन्द्र २६३
प्रेमलता ४३६
प्रेमसागर ५४२, ५४३

फ

फतहचन्द्र ४७८, ४८६
फतहचन्द्र सेठी ५५९
फिसकोन ३१३
फूलकुमारी ५००, ५०२
फ्रेजर ४१७
फ्रेजर वॉकवे ४०८
फैयाजअली खॉ ३४९

ब

वच्चूलाल ५१८
वद्रीदास रायवहादुर ४४७
वधावर आई० सी० एस० ३९६
वनवारीलाल स्याद्वादी ३९१
वनारसीदास ४३६
वनारसीदास एम० ए० ३१४, ३४८
वनारसीदास चतुर्वेदी २४५
वनारसीदास (पडित) १९०
वनारसीदास (प्रो०) २३२

बरातीलाल २२
बर्क ३५३
बर्क (बिजनौरी) ५५१
बलदेवदास ६०, ६१, ७६
बशेशरनाथ ५५७
बहजाद लखनवी ३५६
बाडीलाल मोतीलाल शाह ३२६
बाबूलाल वकील ३१८
बालगगाधर तिलक ३१४, ३२६, ३५२
बालमुकद (पण्डित) ६
बालमुकुन्द पोस्टमास्टर २०६
बाहुबली १२१
बी० जी० हार्नीमैन ४४२
बुद्ध १०६, ३५८, ५४४
बुलन्दराय वकील १६३
बृजबासीलाल ६, २५, २७
बेचरदास २२६
बेंजामिन फ्रेंकलिन ४५४
बैजनाथ १५१
बैजाबाई ४७६

भ

भगतसिंह ५५१
भगवानदास ३१३
भगवानदास (डा०) १८१
भगवानदास सेठ ४८६
भगवानदीन महात्मा १६, १४५, २६२, ३१२, ३२७, ३६७, ३७३, ४४१, ४४२, ४४३, ४४७, ४५६, ४६१
भजनलाल रसोइया १२७
भवानीदास सेठी ३४४
भागचन्द्र सेठ १२८
भागीरथ वर्णी ५३, ५६, ६२, ७८, ८२, १६६, २८०, ३०७
भारमल्ल (राजा) २३८
भीमसैन १६३, १६४, १६५
भीष्मपितामह २३, १३३
भोईदेवी जैन अग्रवाल २०८
भोज ८८, ८६
भोलानाथ दरख्शाँ २३१

म

मगलसेन ३१
मगलसैन जमीदार १६२
मक्खनलाल २६
मक्खनलाल (पडित) ४४३, ५६१
मक्खनलाल जैन ठेकेदार २२७
मगनबाई ३२, ११६, ३१२, ३२२, ३६६, ४६७, ४६८, ४६६, ५००, ५०२, ५०३, ५०५, ५०६, ५०७
मगनलाल ५०२
मण्डन मिश्र ६८
मथुरादास (पडित) १५१
मथुरादास (बी ए) १७०, ३२८
मथुरादास इजिनियर १६३
मथुरादास टडैया ५२६, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३८
मथुरादास सेठ ४८५, ४८६, ५५७
मथुराबाई ११४, ११५

हरिभाई देवकरण सेठ १५२
हरिसत्य भट्टाचार्य १८८, ३१६, ३१७
हरिहर शास्त्री १८८
हर्मन जैकोबी ३८, ३१२, ३१४
हमरत सहवाई ३६०
हाराण बाबू कविराज १३०
हार्डिग ३४६, ५७८
हिमाशुराय ५४४
हीराचन्द्र ६४
हीराचन्द्र नेमिचन्द्र २७५, २७६, २७७, ४४४
हीरालाल ६६, ७०, ७१
हीरालाल कागलीवाल ५८५
हीरालाल (डा०) १२८
हुकमचन्द्र खुशालचन्द्र सेठ ३१३
हुकमचन्द्र टडैया ५३८
हुकुमचन्द्र (सेठ) १८, १२८, ४८३, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५६०
हुलासराय ५५७
हेमचन्द्र मोदी २४५, २६६, २६८
हेमचन्द्राचार्य २३८
ह्यू रोज ६६

वेंकटेश्वर-समाचार ३५७
वोन्ताँ २०६
बौद्ध जैनतत्त्वज्ञान ३७

भ

भगवती-आराधना २३१, २३८
भाग्य और पुरुषार्थ २८२
भाग्यमित्र ३५२
भारतीय विद्या २७०
भाग्योदय ३५२
भावपाहुड ४४६

म

मंगलादेवी २८१
मनमोहिनी नाटक २८१
मनोरंजन २६१, २६२
मराठा और अंग्रेज ४५४
महाभारत ३३१
माडर्न रिव्यू ३६, २५६, ३५२
मितव्ययिता २६२
मिथ्यात्वनाशक नाटक १६५, १६६
मेरी जीवनगाथा ५४, १६३, १६४
मेरी भावना २०६, २१६, २१६
मैत्रीधर्म ३०२
मोक्षमार्गप्रकाश २७७
मोक्षशास्त्र १८६, ४६४

य

यशस्तिलक चम्पू १८८
युवकोंकी दुर्दशा २८२
योनिप्राभृत २३८

र

रत्नकरण्ड श्रावकाचार ७५, १८६, २७७
राजपूतानेके जैन वीर २००, ३८६
रामदुलारी २८१
रामायण २७३

ल

लघुकौमुदी १५०, ४८५, ५०५
लज्जावतीका किस्सा २८१
लाइट आफ एशिया ५४८
लाटीसंहिता २२०
लिबर्टी २५५
लीडर ३५२

व

वर्णी-अभिनन्दन-ग्रन्थ ८७
वसुनन्दि श्रावकाचार २८२
विश्ववाणी ४६३
वीर १८, २८, ३६, ४५, ४६, ५२, १३८, १७१, २०२, ३८८, ३६६, ४०७, ४०६, ४२०
वीर पुष्पाञ्जलि २१७
वेदान्तपरिभाषा ३१४

श

शती ११०
शान्तिधर्म ३०२
शिक्षाप्रद शास्त्रीय उदाहरण २२१
शेर-ओ-सुखन २२६
श्राविकाधर्मदर्पण २८२

भ

भारत जैन महामण्डल २७८, ३००, ३१२, ४४२
भारतधर्म महामण्डल ४०२
भारतवर्षीय दि० जैन महासभा ३१, ३५, ३८, ३९, १७८
भारतवर्षीय दि० जैन महाविद्यालय चौरासी १७६
भारतवर्षीय दि० जैनपरिषद् ४०, ४०३, ४१५, ४१६, ४४६, ५०२
भारतवर्षीय दि० जैन-परीक्षालय १५३
भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी सस्था १८६, १८८, १८९, १९०
भारतीय ज्ञानपीठ ५६८

म

मथुरा महाविद्यालय १७८, १७९
महाराज कालेज २९९
महाराष्ट्र जैन सभा १५४
मध्यभारत हिन्दी साहित्यसमिति ४५४
माणिकचन्द्र दि० जैन ग्रन्थमाला २५४, २६७
माणिकचन्द्र परीक्षालय ६४, ७४
माध्व जीनिंग फैक्टरी लि० १५२
मिलिटरी एकेडेमी ५८०
मिश्र विश्वविद्यालय ३५७
मुन्नालालजीकी धर्मशाला ४९
मैदागिनकी धर्मशाला, काशी १८६
मैनासुन्दर-भवन (नई धर्मशाला), आरा १०८
मोराजी भवन ८२

य

यशोविजय श्वेताम्बर जैन पाठशाला ५१८

ल

लन्दन विश्वविद्यालय ४३६
लेजिस्लेटिव एसेम्बली ५७२
लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज ५७९

व

वगीय अहिंसा परिषद् १८८
वगीय सार्वधर्म परिषद् ३१३, ३२०
वर्द्धमान जैन बोर्डिंग हाउस, जयपुर २९९
वर्द्धमान लाइब्रेरी ३४९
वर्द्धमान विद्यालय ३४९, ३५२
वान यूनिवर्सिटी, जर्मनी ३१२
वार्लिटियर कोर, देहली ५७१
वीर सेवा-मन्दिर ५५, ६०, ३०९, २२३
व्यवस्था विधिविधायिनी सभा, इन्दौर ३२२

श

शान्तिनाथ मन्दिर ११९
शान्तिनाथ जिनालय ३१९
शान्तिनिकेतन ३५२, ४११
शिवचरणलाल फण्ड ३७
श्राविकाश्रम, बम्बई ४४१
श्वेताम्बर जैन सघ ४४७